卐 श्रीजिनमूर्त्तिपूजा-सार्द्धशतकम् 卐

(संस्कृतभावार्थमयं-हिन्दी अनुवाद युक्तम)

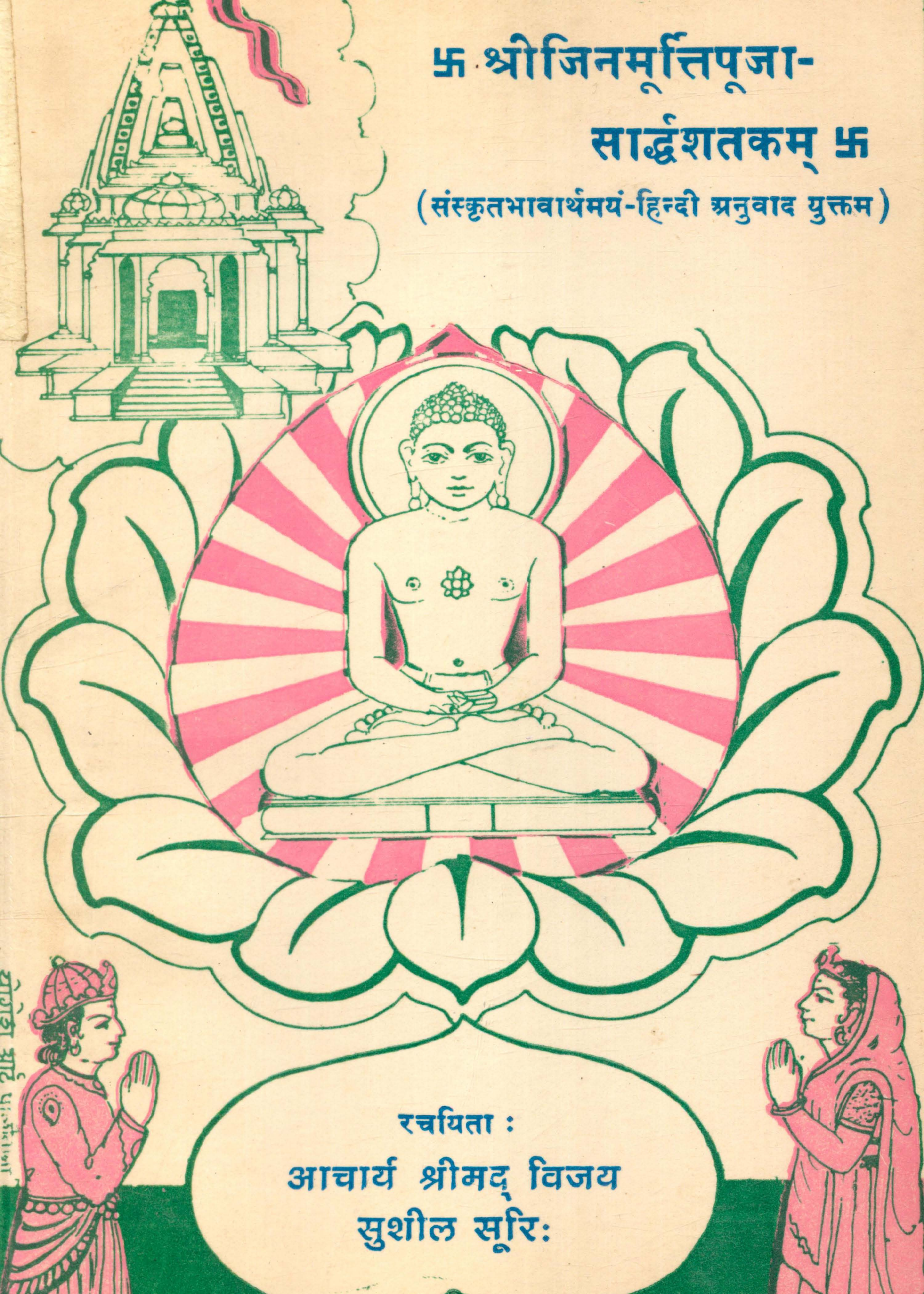

रचयिता :

आचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरिः

❀ श्री नेमि-लावण्य-दक्ष-सुशील ग्रन्थमालारत्न ८७ वाँ ❀

卐 श्रीजिनमूर्त्तिपूजा-सार्द्धशतकम् 卐

[संस्कृतभावार्थमयं-हिन्दी अनुवाद युक्तम्]

- विरचितम् -

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति-तपोगच्छाधिपति-महाप्रभावशालि - श्रीकदम्बगिरिप्रमुखानेकतीर्थोद्धारक - परम - पूज्याचार्यमहाराजाधिराज **श्रीमद् विजय नेमिसूरीश्वराणां** दिव्यपट्टालङ्कार-साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति - शास्त्रविशारद-कविरत्न-परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वराणां** प्रधानपट्टधर-संयमसम्राट्-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर - व्याकरणरत्न - धर्मप्रभावक - परमपूज्याचार्यवर्य **श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वराणां** सुप्रसिद्धपट्टधर-जैनधर्मदिवाकर-जिनशासनशणगार-तीर्थप्रभावक-शास्त्रविशारद - साहित्यरत्न - कविभूषण - प्रतिष्ठाशिरोमणि - राजस्थानदीपक-मरुधरदेशोद्धारकेतिपदसमलङ्कृतेन

आचार्य श्रीमद्विजयसुशीलसूरिणा ।

❀ सम्पादकः ❀
अष्टोत्तरशतग्रन्थसर्जकाचार्य
श्रीमद् विजयसुशीलसूरिः

❀ संशोधकः ❀
पण्डितप्रवर
श्रीशम्भुदयालपाण्डेयः

❀ प्रकाशकः ❀
श्रीसुशीलसाहित्यप्रकाशन-
समितिः
जोधपुर, राजस्थान

❀ सत्प्रेरकः ❀
पंन्यास
श्रीजिनोत्तमविजयगणिवर्य-
स्तथाश्रीरविचन्द्रविजयो-
मुनिः

श्रीवीर सं. २५२० विक्रम सं. २०५० नेमि सं. ४५
प्रतियाँ १००० ❀ प्रथमावृत्ति ❀ मूल्य—५) रुपये

卐 प्रकाशन अनुदान 卐
संघवी श्री पुखराजजी चम्पालालजी पारसमलजी
बाबूलालजी पुत्र-पौत्र शा. ताराचन्दजी
मु. बिशनगढ़, जि. जालौर (राज.) की ओर से—

❀ प्राप्ति-स्थानम् ❀
सुशील-सन्देशप्रकाशन-
मन्दिर
सुराणा कुटीर, रूपाखान
मार्ग, पुराने बस स्टेण्ड के
पास, मु. सिरोही
(राजस्थान)

❀ मुद्रकः ❀
ताज प्रिन्टर्स
जोधपुर, राजस्थान
फोन : २१४३५,
२१८५३

शासन सम्राट् परम पूज्य आचार्य
महाराजाधिराज श्रीमद् विजय
नेमिसूरीश्वर जी महाराज साहेब
साहित्य सम्राट् परम पूज्य
आचार्य देवेश श्रीमद् विजय
लावण्यसूरीश्वरजी महाराज सा.
धर्म प्रभावक परम पूज्य
आचार्य प्रवर श्रीमद् विजय
दक्षसूरीश्वरजी महाराज सा.
धर्मलाभ
परम पूज्य आचार्य
विजय सुशील सूरीश्वरजी महाराज सा.
प्रवचनकार परम पूज्य मुनिराजश्री
श्री जिनोत्तम विजयजी महाराज सा.
योगेश आर्ट पालीताणा

卐 वन्दन हो गुरु-चरणे 卐

शासन के साम्राज्य में, तपे सूर्य सा तेज,
तीर्थोद्धार किये कई, सोकर सूल की सेज।
धर्मधुरन्धर सद्गुरु, मंगलमय है नाम,
नेमिसूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ॥ १ ॥

साहित्य के सम्राट् हो, शास्त्र विशारद जान,
स्वयं शारदा ने दिया, जैसे गुरु को ज्ञान।
व्याकरणे वाचस्पति, काव्यकला अभिराम,
श्री लावण्य सूरीश्वरा, वन्दन आठों याम ॥ २ ॥

शब्दकोश के शहंशाह, सरिता शास्त्र समान,
कवि दिवाकर ने किया, काव्यशास्त्र का पान।
ग्रन्थों की रचना में राचे, सरस्वती के धाम,
दक्ष सूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ॥ ३ ॥

शान्त सुधारस मृदुमनी, राजस्थान के दीप,
मरुधरोद्धारक सत्कवि, तुम साहित्य के सीप।
कविभूषण हो तीर्थप्रभावक, नयना है निष्काम,
सुशील सूरीश्वर को करूँ, वन्दन आठों याम ॥ ४ ॥

❀❀□❀❀

✽ स...म...र्प...ण ✽

संयमसम्राट्

धर्मप्रभावक

देशनादक्ष

शास्त्र-विशारद

कविदिवाकर

व्याकरणरत्न

श्रुत-संयम-वय-स्थविर

गीतार्थ-महापुरुष

सत्क्रियापात्र

बालब्रह्मचारी उपकारी

ज्येष्ठबन्धु पूज्य गुरुदेव

स्वर्गीय आचार्य प्रवर

श्रीमद् विजयदक्षसूरीश्वरजी

महाराज साहब की पुण्यसंस्मृति में

उन्हीं के कर-कमलों में

यह कृति सादर समर्पित—

—**विजयसुशीलसूरि**

卐

आत्म-निवेदनम्

सुविदितचरमेतद् यन्मानवेषु धर्मप्राधान्यमेव तान व्यवच्छेदयति पशुभ्यः । सत्यञ्चैतद् विविधाचारविचार-वादव्याकुले विश्वस्मिन् समेषामन्तःकरणेषु सद्भावाविर्भाव-पुरस्सरं विश्वहितं विश्वबन्धुत्वञ्च धर्ममन्तराने केनापि तत्त्वेन समुपस्थापयितुं शक्यते । धर्मस्य विविध विवेचने सत्यपि 'अहिंसा-सत्याऽस्तेय-ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहाः' इति विश्वजनीनतामाप्नुवन्ति । एते महाव्रता एवं विश्व-धर्माधाराः सन्तीति विषये न खलु विसंवादः ।

धर्ममाचरता मनुष्येण स्वकीयस्याराध्य-देवस्य आरा-धना सगुणरूपेण कर्त्तव्या, अथवा निर्गुणरूपेणेति प्रश्नोऽयमुदेति ? उभयविधो मार्गो निसर्गोज्ज्वलः किन्तु मानवानां चित्तैकाग्रता साधनमन्तरा नासम्भाविनी । अन्यच्च सरलेन सरसेन सगुणमार्गेण यदि सौकर्यं स्यात् तदा को नाम मन्दमतिः कठिनेन मार्गेण प्रयत्नशीलः स्यात । सितशर्करया चेद् रोगनिवृत्ति स्तदा कः खलु कटुकौषधिशमनीयमुपायमाश्रयेत ।

अतः सगुणोपासनामूर्त्तिपूजा-पद्धति श्च सकलेऽपि संसारे उररीक्रियते जनैः । प्रामाणिकमेतद् यत् भारतीय

संस्कृतौ चैत्यानां-मन्दिराणां मूर्त्तीनाञ्च प्राधान्यमासीत । श्रीकश्मीरप्रदेशात् कन्याकुमारीपर्यन्तं सर्वेषु ग्रामेषु नगरेषु च हिन्दु-जैन-बौद्धानां स्थापत्य-शिल्पानां नव्यानि भव्यानि मन्दिराणि सन्ति ।

मन्दिराणां निर्माणानि अतीव प्राचीनानि सन्ति । समये-समये पुरातन विभागेन भग्नशेषाणां भूगर्भाणाञ्च मन्दिराणां मूर्त्तीनाञ्च सत्ता प्रमाणी क्रियतेऽनुदिनम् ।

श्री जैनागमशास्त्रेषु जैनेतरवेद-पुराणादि-ग्रन्थेषु च बहुतराणि मूर्त्तिपूजायाः प्राचीनतायाः प्रमाणानि दरीदृश्यन्ते । तदनु शास्त्रेषु साहित्य-काव्येषु विविध प्रबन्धेषु च **'मूर्त्तिपूजापद्धतिः'** विशेषतः प्रमाणिता ।

अनाद्यनन्तश्चायं विश्वोऽक्षराकृतिमयः । सर्वज्ञ विभु श्री जिनेश्वर-तीर्थङ्करभगवद्भिरर्थरूपेण भाषिताः श्रुत-केवलि श्रीगणधरभगवद्भिः सूत्ररूपेण गुम्फिताश्च परम पवित्राः श्री जिनागमाः-जैनागमाः शास्त्राणि चाक्षर-मयापि तथैव वीतरागदेवानां श्री जिनेश्वराणां मूर्त्तयः, प्रतिमाः आकृतिमयानि । तयोर्द्वयोः श्री जिनागम-प्रतिमयोश्चानन्य भावैरनुपमाराधनाभिः उपासनाभिरह-र्निशमवश्यं सेवनीये । द्वयो र्मध्ये एकतरस्यापि उपेक्षा निन्दा कर्मबन्धकरी । अनयोर्मध्ये एकस्यापि परित्यागेन

निन्दयोपेक्षया वा **वयं** सन्मार्गात् परिभ्रष्टाः उन्मार्ग-पतिताश्च भवामः। इत्थमुन्मार्गमनुसरता आत्मना कदापि मोक्षं शाश्वत् सुखञ्च नावाप्यते, इति मे विश्वासः।

प्रस्तुतं **'श्रीजिनमूर्त्तिपूजासार्द्धशतकम्'** नामैषा कृति-र्मया सत्पुरुषाणां विद्याविचारचतुराणां-दक्षानां जनानां करेषु संस्थापता हर्ष-प्रकर्षोऽनुभूयते। 'श्रीजिनमूर्त्तिपूजा' परिप्लुतचेतसा मया यथामति सरलं सरसञ्च संगुम्फितं, किन्तु कियन्मे साफल्यमिति विषये तु शास्त्राब्धि-पारावारीणाः धुरीणा विद्वांस एव प्रमाणम्।

अस्याः कृतेः प्रस्तावनाकारकाः विद्वद्वर्याः **श्री शम्भू-दयालपाण्डेयाः** समये-समये मां प्रोत्साहितवन्तः पदे-पदे परिष्कृतवन्तश्चातस्ते धर्मलाभयुक्त-धन्यवादार्हाः। मन्ये कृतिरियं सर्वेषां चेतदस्तु **श्रीजिनमूर्त्तिपूजां** भावनां भावयितुं साफल्यं प्राप्स्यतीति॥

श्री विक्रम २०४९ तमे वर्षे
वैशाख शुक्ला चतुर्दश्यां
तिथौ बुधवासरे
साथीन ग्रामे
श्री कुन्थुनाथ जिनमन्दिरे
श्री नाकोड़ा भैरवस्य
श्री पद्मावतीदेव्याश्च प्रतिष्ठादिने
दिनाङ्क ५-५-१९९३

आलेखितम्—
आचार्य विजय
सुशीलसूरिः
[साथीन, राजस्थान]

卐

प्रस्तावना

यह 'श्रीजिनमूर्त्तिपूजासार्द्धशतकम्' जैन धर्मदिवाकर-शास्त्रविशारद् साहित्यरत्न पूज्य आचार्य श्री सुशीलसूरि महाराज की अनुपम-कृति है। मूर्त्तिपूजा की प्रामाणिकता एवं प्राचीनता को सरल एवं सरस रीति से प्रकट करने की दक्षता, भाषा-शैली की प्राञ्जलता, आलंकारिता एवं रससिद्धता रचयिता की रचना में चार चाँद लगाने में सर्वथा सहायक हुए हैं।

सम्प्रति, संस्कृत-साहित्य-रसास्वादकों की न्यूनता परिलक्षित होते हुए संस्कृत भाषा को महत्त्व प्रदान करते हुए आचार्यश्री का रचनाधर्मित्व स्वरूप देववाणी संस्कृत को अमृतवर्षी सिद्ध करता है। विषय को स्फुट एवं सर्वग्राही बनाने की अभिलाषा से ही आचार्यश्री ने संस्कृत भावानुवाद एवं हिन्दी अनुवाद को भी साथ ही आत्मसात् किया है। गुजराती मातृभाषा से आप्यायित मानस होने पर भी हिन्दी की प्राञ्जलता एवं हिन्दी के प्रति आपका अनुराग प्रशंसनीय है। फलतः संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषा साहित्यों को सजाने वाली यह रचना अपना सहज स्थान बनाने में सक्षम होगी—ऐसा मेरा विश्वास है।

संस्कृत साहित्य, वस्तुतः भारतीय संस्कृति का साहित्य है। जैनाचार्यों ने भी समय-समय पर इस भाषा की श्रीसमृद्धि में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है। संस्कृत साहित्य का 'शतक-साहित्य' बड़ा ही विशाल, सरस एवं हृदयस्पर्शी है। भक्त अपने हृदय के उद्‌गार अपने उपास्य के समक्ष प्रस्तुत करता है। अपनी मान्यताओं को प्रमाणित रूप में प्रस्तुत करने के लिए विविध प्रामाणिक प्रसङ्गों के सहारे वह उन्हें परिपुष्ट एवं सैद्धान्तिक सिद्ध करता है। 'मूर्त्तिपूजा' भी एक ऐसा ही सिद्धान्त है, ऐसी ही पद्धति है, जिसके विषय में अनेक कवियों, मनीषियों एवं विचारकों ने अपने विचार काव्यात्मक तथा सैद्धान्तिक रूप में प्रस्तुत किये हैं।

शतक साहित्य में भर्तृहरि के नीतिशतक शृंगार-शतक एवं वैराग्यशतक अपनी अलग ही छाप रखते हैं। **अमरूक शतक, भल्लट शतक,** उपाध्याय श्री यशोविजय विरचित- '**प्रतिमाशतक**', मयूर भट्ट का **सूर्यशतक,** बाण भट्ट का '**चण्डी शतक**', आनन्दवर्धन का **देवीशतक** आचार्य समन्तभद्र का **जिनशतक** (या जिनशतकालंकार) आदि का भी विशिष्ट महत्त्व है। आचार्य समन्तभद्र के स्तोत्रों में हृदयपक्ष के साथ कलापक्ष का भी मंजुल समन्वय है। जम्बूकवि का 'जिनशतक' स्रग्धरा छन्द में

निबद्ध सुन्दर एवं सरस रचना है। स्रग्धरा छन्द में रचना का सौन्दर्य हृदय एवं कला दोनों की दृष्टि से उत्तम है।

इसी क्रम में मूर्त्तिपूजा को लक्ष्य बनाकर शिखरिणी आदि छन्दों में निबद्ध विद्वद्वर्य **आचार्य प्रवर श्रीमद्विजय सुशील सूरीश्वरजी म.** की यह रम्य रचना '**जिन-मूर्त्तिपूजासार्द्धशतकम्**' पूर्णतः मौलिक एवं प्रामाणिक रचना है। पूजा के सन्दर्भ में विशद् प्रकाश डालते हुए मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता एवं आगम-शास्त्रों के सिद्धान्तों को प्रामाणिकता मुखरित करना, कवि का उद्देश्य रहा है। अतः काव्य पक्ष को पूर्ण गति नहीं मिल पाई है, किन्तु फिर भी यथावत् रूप में काव्यात्मक शैली की छटा, अलंकार, रस, भावों की संसृष्टि सर्वत्र छिटकती-सी दिग्गोचर होती है।

'**श्रीजिनमूर्त्तिपूजासार्द्धशतकम्**' में प्रस्तुत कुछ काव्या-पक्षीय तथा सिद्धान्तपक्षीय उदाहरण इस प्रकार हैं--

इयं जैनी मूर्त्तिर्हृदयकमले यस्य लसिता
न दुःखं दारिद्रयं दलितमखिलं मोहनिकरम्।
विधातुं दुःशक्यं भवति सुलभं तत् प्रतिपदम्,
अतो ध्येया गेया सततमभिपेयाऽस्तियुगलैः ॥

चतुर्भिर्निक्षेपैः प्रथिततरनामाकृतिमयैः
सुभावैः सन्दिष्टा विमलमतिभिः संयमधनैः ।
सदा सद्भिस्सेव्यारुसुमतिसदनैनम्र वचनैः
यतश्चैतत् शास्त्रैरनुभवपदैर्दृष्टमखिलम् ।।

सुखश्रेणी यस्यां वसति कलहंसीव सुखदा
गुणग्रामारामा नयनसुखसारा अनुदिनम् ।
महीयन्ते तस्माद् भवभयविभेत्तुः प्रतिकृतिः
लभन्तां तां सिद्धिमिह भवभवां वा परगताम ।।

श्रीपाल की शरीर-सुषमा का वर्णन कितना सटीक है—

म्रदिम्ना यत्पादौ कमलमृदुतां ताव जयताम्
करौ शुण्डादण्डौ पुरवर कपाटोपममुरः ।
ललाटश्चन्द्रार्धं वपुरखिल शोभातिवसनम्,
समेषां चानन्दं जनयति यथा पार्बणविधुः ।।

सुधी पाठकगण, '**श्रीजिनमूर्त्तिपूजासार्द्ध शतकम्**' से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट तथा आह्लाद प्राप्त करेंगे, यही विश्वास है । पूज्य आचार्यश्रीजी ने मुझे इसके संशोधन के लिए जो कार्यभार सौंपा है, तदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ ।

दिनाङ्क १२-५-१९९३

विदुषां वंशवद :
शम्भुदयाल पाण्डेय
१०/४३० नन्दनवन
जोधपुर-८
राजस्थान

सप्रेम निवेदन

मान्यवर श्री ....

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब कहा जाता है, जिसमें मौलिक साहित्य का महत्त्व सर्वाधिक है। मौलिक साहित्य के पठन से आपके परिवार में अच्छे संस्कारों का सिंचन होगा, जिससे जीवन में प्रेम और शान्ति के फूल खिलेंगे।

- आध्यात्मिक विकास के लिए तत्त्व चिन्तन का साहित्य।
- स्वस्थ जीवन के लिए मौलिक चिन्तन का साहित्य।
- जीवन के शाश्वत मूल्यों को उजागर करने वाला कथा-साहित्य।
- भीतरी समस्या को सुलझाने वाला प्रेरक साहित्य।

यह सब प्राप्त करने के लिए आप श्री सुशील साहित्य प्रकाशन समिति (रजि.) द्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्य पढ़िये।

- सुन्दर-सरल-सरस।
- सुरूचिपोषक-सुसंस्कारवर्धक।
- शुभ और शुद्ध विचारों से समृद्ध।
- ऐसे साहित्य की नियमित प्राप्ति हेतु आप आजीवन सदस्य अवश्य बनें।

सम्यक् साहित्य के प्रचार और प्रसार में सहभागी बनने हेतु हमारा सप्रेम भावपूर्ण निमन्त्रण है।

आजीवन सदस्यता शुल्क—२७११ रुपये

आचार्य श्री सुशील सूरी जी
जैन ज्ञान मन्दिर, सिरोही

श्री सुशील साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर द्वारा प्रकाशित भूत-भावी-तमाम उपलब्ध प्रकाशनों की एक-एक प्रति निःशुल्क भेजी जायेगी।

भावी तमाम प्रकाशनों में आजीवन सदस्य के रूप में नाम छपेगा व एक-एक प्रति निःशुल्क प्रेषित की जायेगी।

श्री सुशील-साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर के नाम का चैक/ड्राफ्ट/रोकड़ २७११ रुपये निम्न पते पर भेजें।

श्री सुशील-साहित्य प्रकाशन समिति
C/o **श्री गुणदयालचंद जी भंडारी**
राईकाबाग, पुरानी पुलिस लाइन के पास,
मु. जोधपुर (राज.)

दानवीर महानुभाव आजीवन सदस्य बनकर सम्यग्-ज्ञान के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बनें।

❀ विनीत ❀

ट्रस्ट मण्डल
श्री सुशील साहित्य प्रकाशन समिति
श्री गुणदयालचंद जी भण्डारी, जोधपुर
श्री मांगीलाल जी सी. जैन तखतगढ़ (नेल्लोर)
श्री गणपतराज जी चौपड़ा, पचपदरा (बम्बई)
श्री हुक्मीचन्द जी कटारिया, रूण (बैंगलोर)
डॉ. जवाहरचन्द्र जी पटनी, कालन्द्री
श्री नैनमल विनयचंद्रजी सुराणा, सिरोही
श्री मांगीलाल जी तातेड़, मेड़ता सिटी

अवश्य पढ़ें !   ।। ॐ ह्रीं श्री नमो नाणस्स ।।   पढ़कर ज्ञान प्राप्त करें !

सर्वजनहिताय-सर्वजनसुखाय की सत्प्रेरणा से प्रकाशित मानव-जीवन में आध्यात्मिक चेतना का सजग प्रहरी जीवन में सुसंस्कारों की सौरभ प्रवाहित करने वाला

हिन्दी मासिक पत्र

卐 सुशील-सन्देश 卐

स्थापित सन् १९८७

❀ प्रेरक ❀

परम पूज्य आचार्य भगवन्त

श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वर जी महाराज साहब के शिष्यरत्न पूज्य पंन्यासप्रवर श्री जिनोत्तम विजयजी गणिवर्य महाराज

❀ सम्पादक ❀

नैनमल विनयचन्द्र सुराणा

सिरोही (राज.)

❀ प्रकाशक ❀

सुशील फाउण्डेशन (रजि.)

सुशील-सन्देश में आप क्या पढ़ेंगे ?

❀ जीवन में गुनगुनाहट कराने वाले गीत-संगीत-कविता
— काव्यकुञ्ज

❀ जैन संस्कृति की गौरव गाथा गाने वाली मधुर शिक्षाप्रद कहानियाँ
—पढ़ो और पाओ

❀ जैन तत्त्वज्ञान की विशद जानकारी हेतु स्वाध्याय प्रश्नोत्तरी
—समाधान के आयाम

❀ सुवचनों का अपूर्व संग्रह
—अनमोल मोती

❀ ज्ञान के साथ में विविध-चुटकुलों का संग्रह —आओ आनन्द करें

❀ प्रकाशित पुस्तक-ग्रन्थों की समीक्षात्मक टिप्पणी —साहित्य समीक्षा

❀ विविध शासन-प्रभावना के अनुमोदनीय समाचार —धन्य जिनशासन

❀ पाठकों के विविध विचार —प्रतिक्रिया, मत-सम्मत

* इन स्थायी स्तम्भों के अतिरिक्त विविध लेख, ऐतिहासिक कथाएँ, जीवन-निर्माण के उपयोगी लेख, तीर्थमहिमा, स्वास्थ्य चिन्तन पर लेख आदि का प्रकाशन होता है।

* विगत ७ वर्षों में सुशील-सन्देश के १७ भव्य विशेषांक प्रकाशित हुए हैं।

❀ सदस्यता शुल्क ❀

एक वर्ष : १११/-रु.
पाँच वर्ष : ४११/-रु.
आजीवन : ७११/-रु.
आजीवन स्थायी स्तम्भ : १५११/ रु.

❀ सम्पादकीय कार्यालय ❀
व सम्पूर्क-सूत्र

सुशील सन्देश प्रकाशन मन्दिर
सुराणा कुटीर, रूपाखान मार्ग
पुराने बस स्टेण्ड के पास,
सिरोही-३०७ ००१ (राज.)

❀ कार्यालय ❀

संघवी श्री जौहरीलाल सुरेन्द्र कुमार पटवा
मु. पो. जैतारण, जि. पाली (राज.)

❀ विनीत ❀

- **सुशील फाउण्डेशन**
- **संघवी श्री जौहरीलाल जी सुरेन्द्र कुमार पटवा, जैतारण**
- **शा. बाबूभाई पूनमचन्द जी, जावाल (ऊंभा)**
- **शा. सुखराज कपूरचन्द जी, अगवरी (बम्बई)**
- **शा. हनवन्तचन्द जी मेहता, पाली**
- **शा. किशोरचन्द मीठालाल जी (जालोर वाला) पाली**

卐 सुकृत के सहयोगी 卐

संघवी श्री पुखराजजी ताराचन्दजी

विशनगढ़ (राज.) जि. जालोर

आपने बिशनगढ़ से अचलगढ़—आबुजी की **पदयात्रा संघ, मन्दिर निर्माण में महान् लाभ, नवपद ओली आदि** पुण्य कार्य में लाभ लिया है।

शासन सम्राट् प. पू आचार्य महाराजाधिराज **श्रीमद् विजय नेमि - लावण्य - दक्ष - सुशील सूरीश्वरजी म. सा.** के यशस्वी पट्टधर राजस्थान दीपक प. पू. **आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म.सा.** एवं पू. पंन्यास प्रवर **श्री जिनोत्तम विजयजी गणिवर्य** म. सा. के सदुपदेश से इस पुस्तक प्रकाशन में सुकृत के सहयोगी के रूप में लाभ लिया है। एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद।

—प्रकाशक

सूचना

यह पुस्तक पू. साधु-साध्वीजी म. एवं ज्ञान भण्डारों को सादर **भेंट स्वरूप** प्रेषित की जायेगी। प्राप्ति स्थान पर सम्पर्क कर प्राप्त करें।

卐 श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ छन्द 卐

आणी मन शुद्ध आसता, देव जुहारू शाश्वता ।
पार्श्वनाथ मनवांछित पूर, चिंतामणी म्हारी चिंता चूर ॥१॥

अणियाली तोरी आँखड़ी, जाणे कमलतसी पाँखड़ी ।
मुख दीठा दुःख जावे दूर, चिंतामणी ॥२॥

को केहने को केहने नमे, म्हारा मनमां तू ही गमे ।
सदा जुहारु उगते सूर, चिंतामणि ॥३॥

बिछड़िया बाल्हेसर मेल, वरी दुश्मन पाछा ठेल ।
तूं छे म्हारे हाजरा हजूर, चिंतामणि ॥४॥

एह स्तोत्र जे मन में धरे, तेहना काज सदाइ सरे ।
आधि - व्याधि दुःख, जावे दूर चिंतामणि ॥५॥

मुझ मन लागी तुमसु प्रीत, दूजो कोय न आवे चित्त ।
कर मुझ तेज प्रताप प्रचूर, चिंतामणि ॥६॥

भव भव देजे तुम पद सेव, श्री चिंतामणि अरिहन्तदेव ।
समय सुन्दर कहे गुण भरपूर, चिंतामणि ॥७॥

卐 卐 卐

बिशनगढ़ निवासी

संघवी पुखराजजी ताराचन्दजी छाजेड़

श्रीमती पानीदेवी पुखराजजी छाजेड़

प्रकाशकीय निवेदन

विश्वविख्यात परमपूज्य शासनसम्राट्-समुदाय के सुप्रसिद्ध जैनधर्मदिवाकर-जिनशासनशणगार-राजस्थान-दीपक-मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्र विशारद्-साहित्यरत्न-कविभूषण-तीर्थप्रभावक-बालब्रह्मचारी-परम पूज्याचार्यदेव **श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वर जी म.सा.** के द्वारा विरचित अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन **'आचार्य श्री सुशील सूरि जैन ज्ञान मंदिर'** शान्तिनगर, सिरोही ने पूर्व में किया है।

श्री सुशील साहित्य-प्रकाशन समिति, जोधपुर की ओर से पूज्यपाद आचार्य महाराज श्री रचित **'श्री जिनमूर्त्ति पूजा-सार्द्ध-शतकम्'** नामक एक अनुपम नूतन ग्रन्थ का प्रकाशन करते हुए आज हमें अति आनन्द-हर्ष हो रहा है।

'मूर्त्ति की सिद्धि एवं मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता' दर्शाने वाला यह ग्रन्थ पूज्यपाद गुरुदेव आचार्य म. श्री ने वि. सं. १६४५ की साल में जोधपुर-क्रिया भवन चातुर्मास में लिखा था। उस समय न्यायविशारद् न्यायाचार्य महामहोपाध्याय श्री यशोविजय जी महाराजश्री के **'प्रतिमा शतक'** नामक ग्रन्थ का अवलोकन करते हुए, आपके अन्तःकरण में **नूतन जिनमूर्त्तिपूजा सार्द्धशतक स्तोत्र रूप** में शिखरिणी आदि छन्दों में रचने की भावना स्फुरायमान हुई। आपके शिष्यरत्न पूज्य **मुनिराज श्री जिनोत्तम विजय जी म.सा.** ने तथा प्रशिष्य पूज्य **मुनि श्री रविचन्द्र विजय जी म.** ने भी इस कार्य को शीघ्र प्रारम्भ करने की सत्प्रेरणा

की। बाद में अनुकूलतानुसार पूज्यपाद श्री ने मन्दगति से सहर्ष शिखरिणी आदि छन्दों में सरल संस्कृत भावार्थ तथा हिन्दी अनुवाद युक्त इस ग्रन्थ को प्रारम्भ किया। परमाराध्य श्री देव गुरु-धर्म के पसाय से तथा स्वर्गीय परमपूज्य शासनसम्राट्-परमगुरुदेव तथा स्वर्गीय परमपूज्य साहित्य सम्राट्-प्रगुरुदेव की अदृश्य अनुपम दिव्य कृपा से इस वर्ष में **मेड़तानगर** में महामंगलकारी अंजनशलाका प्रतिष्ठा के शुभ प्रसंग पर वैशाख सुद छठ और बुधवार के दिन सानन्द यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

इस ग्रन्थ की संस्कृत भावार्थ तथा हिन्दी अनुवाद युक्त शिखरिणी आदि छन्दों में सुरम्य रचनाकार पूज्यपाद आचार्यश्री ने इस ग्रन्थ का **सम्पादन कार्य** भी स्वयं ने किया है तथा आत्म-निवेदन संस्कृत में लिखा है। इस ग्रन्थ की हिन्दी में प्रस्तावना लिखने का तथा संशोधनादि का कार्य पण्डितप्रवर **श्री शम्भूदयाल जी पाण्डेय** ने रुचिपूर्वक किया है। ग्रन्थ के स्वच्छ, शुद्ध एवं निर्दोष प्रकाशन का कार्य **डॉ. चेतनप्रकाशजी पाटनी** की देखरेख में सुसम्पन्न हुआ है।

इन सभी का यहाँ पर हम हार्दिक आभार मानते हैं।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में द्रव्य सहायता करने वाले विशनगढ़ (जालोर) निवासी **संघवी श्री पुखराजजी ताराचन्दजी** का भी हम सहर्ष आभार मानते हैं।

—प्रकाशक

卐

卐 ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः 卐

।। सद्गुरुभ्यो नमः ।। 卐 ।। ऐं नमः ।।

* श्रीजिनमूर्त्तिपूजासार्द्धशतकम् *

[संस्कृतभावार्थ–हिन्दीअनुवाद-संयुक्तम्]

– विरचितं –

शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-कविभूषण-

पदेतिसमलङ्कृतेन

आचार्यश्रीमद्विजयसुशीलसूरिणा

[मङ्गलाचरणम्]

नत्वा **जिनोत्तमान्** देवान् ,

पूज्यान् **गणधरान्** वरान् ।

स्मृत्वा **श्रीनेमि-लावण्य-**

दक्षसूरीश्वरान् गुरून् ।। १ ।।

भारतीमार्हतीं स्तुत्वा,
भक्तिभावनया मुदा ।
देव - गुरु - प्रसादाच्च,
सुशीलसूरिणा मया ॥ २ ॥

श्रीजिनमूर्त्तिपूजायाः,
सार्द्धशतकनामकम् ।
स्वजिनोत्तमशिष्यस्य,
प्रार्थनया विरच्यते ॥ ३ ॥

प्रशिष्य - **रविचन्द्रस्य**,
प्रार्थनयाऽपि मया ।
तेषां संस्कृतभाषायां,
भावार्थश्चापि लिख्यते ॥ ४ ॥

अनुवादोऽपि वै हिन्दी-
भाषायां क्रियते शुभः ।
ज्ञेयार्थं सर्वजीवानां,
स्वात्मश्रेयार्थकं मुदा ॥ ५ ॥

□ **मूलश्लोकः–** (शिखरिणी–वृत्तम्)

इयं जैनी मूर्त्तिर्हृदयकमले यस्य लसिता,
न दुःखं दारिद्र्यं दलितमखिलं मोहनिकरम् ।
विधातुं दुःशक्यं भवति सुलभं तत् प्रतिपदं,
अतो ध्येया गेया सततमभिपेयाऽक्षिप्रमुखैः ।। १ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–एषा वीतराग - परमात्मनः श्रीजिनेश्वरदेवस्य मूर्त्तिः, यस्याराधकजीवस्य स्वहृदयकमले सुशोभते, तस्य दुःखं दारिद्र्यं समस्तं दुरितं मोहादिकं कषायनिकरं स्वयमेव सहसा विनष्टं विनाशं भवति । अस्मिन् संसारे यच्च कर्त्तुं दुष्करं कठिनं महता प्रयासेन साध्यं, तदपि झटिति सुकरं सुलभं प्रतिपद्यते ।

अतो भक्तैः सर्वजनैश्च सर्वदा मनसा ध्येया, वचसा गेया, दृष्ट्यादिना च अनवरतदर्शनीया, वन्दनीया, अर्चनीया, पूजनीया चेति ।। १ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–यह वीतराग परमात्मा श्रीजिनेश्वर देव की मूर्त्ति-प्रतिमा जिस आराधक जीव के हृदय रूपी कमल में सुशोभित है, उसके दुःख, दरिद्रता, मोह, मूर्च्छना तथा कर्कश कषायादि अकस्मात् विनष्ट हो जाते हैं ।

इस संसार में जो कार्य दुष्कर-प्रयाससाध्य होते हैं, वे भी सहसा सुकर तथा सुलभ हो जाते हैं ।

अतः सर्वजीवों को अहर्निश मन से, वचन से और काया से (नयनों आदि से) श्रीजिनेश्वरदेव की निष्कलंक निर्विकार भव्यमूर्त्ति-प्रतिमा का ध्यान, गान, दर्शन, वन्दन एवं अर्चन-पूजन करना चाहिए ।। १ ।।

[२]

☐ **मूलश्लोकः–**

अनाराध्यं यद् वै तदपि दुराराध्य-कथितं ,
तथाऽलभ्यं यत्नैः पुनरपि सुलभ्यं भवति तत् ।
तदाहुर्विद्वान् सः सकलकवयो वाक्कुशलिनः ,
सुपूजन्तो मूर्त्ति कति न च शिवं साम्यगमयन् ।। २ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–विपुलैः प्रयासैरपि यत् आराध्यं न प्राप्यते । अथवा क्लिष्टैः क्लिष्टतरैश्चोपायै-र्दुःखेनाराध्यम् । संसारे यदलभ्यमुच्यते कृतप्रयासे पुनरपि तत् सुलभं भवति ।

अतएव पूर्वोक्तां क्लिष्टतां वीक्ष्य तत्त्वदर्शिभिः कविभिः सिद्धवक्तृभिश्चोन्मुक्तकण्ठैः कथितम् – मूर्त्तिपूजां कुर्वन्तो

कति महापुरुषा झटिति मोक्षं न प्राप्नुवन्तः ? अनेके महापुरुषाः मूर्त्तिपूजया शिवं-मोक्षं भेजिरे ।। २ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–महान् प्रयासों से भी जो तत्त्व आराध्य नहीं है, अथवा क्लिष्ट-क्लिष्टतर उपायों के द्वारा अत्यन्त कष्ट सहन करके प्राप्त होता है, संसार में जो अलभ्य कहा जाता है, वह भी सत् प्रयासों से फिर सुलभ भी बन जाता है । अतः पूर्वोक्त कठोरता-क्लिष्टता को सम्यक् प्रकार से देखकर के तत्त्वदर्शी कवियों तथा प्रवक्ताओं ने उन्मुक्त कण्ठ से सहज सरल उपाय मूर्त्तिपूजा के विषय में कहा है कि–'मूर्त्तिपूजा से असंख्य ही महापुरुष सहज रीति से शिव-मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं ।' वस्तुतः **मूर्त्तिपूजा** साधना का, आराधना का सरल एवं सहज उपाय है ।। २ ।।

[३]

☐ **मूलश्लोकः**–

चतुर्भिर्निक्षेपैः प्रथिततर - नामाकृतिमयैः ,
सुभावैः सन्दिष्टा विमलमतिभिः संयमधनैः ।
सदा सद्भिरसेव्याः सुमतिसदनैर्नम्रवचनैः ,
यतश्चैतच्छास्त्रै - रनुभवपदै - र्दृष्टमखिलम् ।। ३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**– तत्त्वदर्शिभिर्मुनिभिर्विद्वद्भिश्च

नामाऽऽकृति-द्रव्य-भावैः निक्षेपैः पूज्या जिनमूर्त्तिः-जिनप्रतिमा इति पूर्वमेव प्रतिपादितम् । कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्य - प्रणीते श्रीसकलार्हत् - स्तोत्रेऽपि कथितमिव—

नामाऽऽकृतिर्द्रव्य-भावैः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मि-नर्हतः समुपास्महे ।। २ ।।

अतः सज्जनैः शास्त्रिकैः सद्बुद्धिभिः सम्यक्प्रकारेण नामादिनिक्षेपैराराध्या पूजनीया । यतो हि शास्त्रानुभवसिद्धेयं जिनप्रतिमापूजनपद्धतिः ।। ३ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—तत्त्वदर्शी मुनिराजों तथा विद्वानों ने नाम, आकृति, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपों से जिनमूर्त्ति—जिनप्रतिमापूजन का सन्मार्ग प्रशस्त किया है। अतः सज्जन, आस्तिक, सुबुद्धजनों को विधिवत् नामादि चार निक्षेपों से श्रीजिनेश्वर भगवन्तों की अंजनशलाका-प्राणप्रतिष्ठा कृत मनोहर मूर्त्ति-प्रतिमा-बिम्ब की अर्चना-पूजा अवश्यमेव करनी चाहिए। क्योंकि, यह जिनप्रतिमा-पूजन-पद्धति जिनागमशास्त्रानुभवसिद्ध निश्चय ही पूर्णतः प्रामाणिक है ।

विशेषः—

(१) वस्तु-पदार्थ के आकार-आकृति तथा गुण से

रहित जो **नाम** वह **'नामनिक्षेप'** कहलाता है। जैसे– जिनेश्वर देवों के श्रीऋषभादि चौबीसों तीर्थंकर भगवन्तों के नाम, वे **'नामजिन'** कहलाते हैं।

(२) वस्तु-पदार्थ के नाम तथा आकार-आकृति युक्त किन्तु गुणरहित हो, वह **'स्थापनानिक्षेप'** कहलाता है। जैसे–जिनेश्वर श्रीऋषभादिक तीर्थंकर भगवन्तों की मूर्त्ति-प्रतिमा-बिम्ब-छवि-चित्र वे सभी **'स्थापनाजिन'** कहलाते हैं।

(३) वस्तु-पदार्थ के नाम, आकार-आकृति तथा अतीत अनागत गुणयुक्त किन्तु वर्तमान में गुणरहित हो, वह **'द्रव्यनिक्षेप'** कहलाता है। जैसे–जिननाम गोत्रकर्म बाँधने वाले श्रीऋषभादि तीर्थंकर भगवन्तों के जीव, वे **'द्रव्यजिन'** कहलाते हैं।

(४) वस्तु-पदार्थ के नाम, आकार-आकृति तथा वर्त्तमान गुणयुक्त जो हो, वह **'भावनिक्षेप'** कहलाता है। जैसे–दिव्य समवसरण में धर्मोपदेश-धर्मदेशना के लिए साक्षात् बिराजमान श्रीऋषभादिक चौबीस जिनेश्वरदेव **'भावजिन'** कहलाते हैं।

'श्रीग्रहशान्ति स्तोत्र' में कहा है कि–

नामजिरणा जिणनामा, ठवणजिणा पुणजिणिंद-पडिमाओ ।
दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था ।। २० ।।

[४]

□ **मूलश्लोकः–**

सुनाम्नो माहात्म्यं निगमनिखिलं गायति सदा ,
महावीरस्यैवं निगदितवचः – सारमतुलम् ।
विमर्शन्तां नित्यं भगवतिमुखै - रुत्तरमुखैः ।
सुलोगस्सं सूत्रं विदितमरिहन्तादिकमपि ।। ४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–नामनिक्षेपस्य महिमा समस्तेष्वागमेषु विविधेषु जैन-जैनेतरशास्त्रेषु सर्वत्रदृष्टिपथमायाति । नामजपप्रभावोऽतुलः सर्वेष्टकार्यसम्पादकञ्चेति । प्रत्यक्षमनुभूयते जपद्भिः । भगवता श्रीमहावीरेण या धर्मदेशना प्रदत्ता, तस्यैव सारभूताः जिनागमाः-जैनसिद्धान्ताः ।

श्रीउत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वितीये श्रुतस्कन्धे पञ्चदशमेऽध्ययने, **श्रीव्याख्याप्रज्ञप्तिभगवतीसूत्रस्य** तृतीये शतके प्रथमे उद्देशे तथा विंशतितमे शतके नवमे उद्देशे, श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्रस्य षष्ठे अध्ययने, श्रीस्थानाङ्गसूत्रस्य चतुर्थे स्थाने तथा दशमे स्थाने, श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रस्य प्रथमे तृतीयसंवरे च

जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा - पूजायाः स्पष्टनिर्देशाः प्राप्यन्ते । श्रीलोगस्ससूत्रसारांशः 'नमो अरिहंताणं' इति महामन्त्र-सारोऽपि नाम्नो माहात्म्यं दर्शयति प्रकटयति च ।। ४ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—नामनिक्षेप तथा नामस्मरण की महिमा श्री जैनागमशास्त्रों में ही नहीं, अपितु जैनेतरशास्त्रों में भी प्रकीर्तित है। नाम जाप का अनुपम प्रभाव सभी मनोवांछित कार्यकलापों का सम्पादन करता है। यह तो जप-जाप करने वाले आज भी अनुभव कर रहे हैं। श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी द्वारा दिये गये धर्मोपदेश ही श्रीगणधर भगवन्तों द्वारा आगमसूत्रों में निबद्ध हैं। अतः श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में आगत दसवें अध्ययन में, श्रीव्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवती सूत्र के तृतीय शतक में आगत प्रथम उद्देश में, तथा बीसवें शतक के नौवें उद्देश में, श्री सूत्रकृताङ्गसूत्र के छठे अध्ययन में, श्रीस्थानाङ्गसूत्र के चौथे और दसवें स्थान में, श्री प्रश्न-व्याकरणसूत्र के प्रथम और तृतीय संवर इत्यादि जिनआगमों में जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा पूजा एवं नाममहिमा परिलक्षित है। लोगस्स सूत्र एवं 'नमो अरिहंताणं' महामन्त्र भी नामनिक्षेप महिमा को स्पष्ट करते हैं।। ४ ।।

□ **मूलश्लोकः—**

सुनिक्षेपं द्रव्यं भवभयहरं सर्वविदितं ।
विनिर्युक्तावश्ये श्रमणपरमैर्वर्णितमहो ।।
सदाऽऽकृत्या सद्यः सुलभ-सुखपात्रं हृदिगतं ।
सदा द्रव्यात् सौख्यं भवति लभते शान्तिनिचयम् ।। ५ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—विदितवरमेतत् यद् द्रव्यनिक्षेपो भवभीतिहारी वर्त्तते । श्रीआवश्यकनिर्युक्तिभाष्ये श्रमण-परमैः प्रबलैः प्रमाणैः सर्वं सुस्पष्टतया प्रतिपादितम् । सद्आकृत्या - स्थापनानिक्षेपेण मूर्त्ति - प्रतिमा - स्थापनेन मनोरथानां सम्पूर्तिर्भवति । द्रव्यादिनिक्षेपैः परमसुखस्य शान्तिश्च प्राप्तिर्भवतीति निःसंदिग्धम् ।। ५ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—सर्वविदित है कि श्रीजैनागम-शास्त्रानुसारी द्रव्यनिक्षेप सांसारिक ईति-भीति को सर्वथा दूर करने में समर्थ है । आवश्यकनिर्युक्ति भाष्य में यह बात महाज्ञानियों के द्वारा अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है । स्थापनानिक्षेप – मूर्त्ति - प्रतिमास्थापन आदि से मनोवांछित समस्त सत्कार्यकलापों की संसिद्धि एवं सम्पूर्ति होती है । द्रव्यादिक निक्षेपों के माध्यम से परमसुख एवं परमशान्ति की प्राप्ति होती है । यह बात भी सन्देहरहित है, इतना ही नहीं, किन्तु प्रामाणिक भी है ।। ५ ।।

□ **मूलश्लोकः—**

सुनिक्षेपं धृत्वा जिनचरणबद्धैकमनसः ,
मुदा चैत्ये स्तोत्रे स्तवनपरमे भावभरिताः ।
सुसंराध्यैतद् भो ! व्यपगतमलास्ते त्वतितरां ,
लभन्ते सज्ज्ञानं चरितमनघं मोक्षमपि च ॥ ६ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—भावनिक्षेपं मनसि संस्थाप्य ये भक्ताः श्रीजिनचरणकमलयोरास्थां विधाय प्रसन्नेन प्रशान्तेन च चेतसा श्रीचैत्यवन्दनस्तोत्रे प्रभोः स्तवने संसक्ता भवन्ति ते तु निर्मलाः क्रोधादिरहिताः भूत्वा सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि प्राप्य मोक्षमपि प्राप्नुवन्ति ॥ ६ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—भावनिक्षेप को अपने मानस में संस्थापित करके जो भक्तजन परमाराध्य श्रीजिनेश्वरदेव के चरणकमलों के प्रति पूर्ण आस्था-श्रद्धा रखते हुए प्रसन्न एवं प्रशान्तचित्त से चैत्यवन्दन एवं प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण-गायन करते हैं, वे निश्चित रूप से क्रोधादि कषायों के दूषण से रहित होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र प्राप्त करके परमपद-मोक्ष को भी प्राप्त करते हैं ।

❀ **विशेष**—चैत्य का अर्थ इस प्रकार कहा है—

[१] 'चैत्यं जिनौकस्तद्बिम्बं, चैत्यो जिनसभातरुः' ।
(श्रीअनेकार्थसंग्रहग्रन्थे प्रोक्तम्)

[२] 'चैत्यविहारौ जिनसद्मनि' ।
(श्रीअभिधानचिन्तामणिकोशग्रन्थे कथितम्)

[३] 'चैत्यवन्दनतः सम्यक्, शुभो भावः प्रजायते ।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्वः, तत् कल्याणमश्नुते ॥'
(आचार्यदेव श्रीमद् हरिभद्रसूरीश्वरः)

[४] 'चैत्यम्-इष्टदेवप्रतिमा ।'
(आचार्यदेव श्रीमद् अभयदेव सूरीश्वरः,
श्रीभगवतीसूत्र, शतक-२, उद्देश-१)

[७]

□ **मूलश्लोकः–**

सुभावस्सद्भावो भरितभगवद्बोधनिचयैः,
पवित्रैश्चारित्र्यै - र्गुणगणयुतैरात्मनि रतैः ।
सुभक्तैः सद्रक्तैः सततसुभगैः शोधिपरमैः,
सदा सेव्यो लोकेऽमलकमलहृद्यै - र्नरवरैः ॥ ७ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–वीतरागविभोः श्रीजिनेश्वरदेवस्य भव्यमूर्तेर्दर्शन-पूजनसमये देवाधिदेवाय वीतराग एव स्तुति-प्रार्थना-स्तवनादिभिर्गुणगानं नामभावपूजनं भावधर्मश्च कथ्यते । नात्र लेशमात्रमपि सन्देहस्यावकाशः । यतो हि जिनपरमात्मनिष्ठैः पवित्रचारित्रयुतैर्भक्तैः मनीषिभिरात्म-

तत्त्वशोधकैश्च योगिभिरपि सेवितो वर्णितरश्चायं पन्थाः। इति सर्वं परिशील्य निर्मलमनोभिः श्रेष्ठैः मनुष्यः सर्वदा श्रीजिनेश्वरदेवस्य दर्शन-पूजनादिकं द्रव्येण भावेन च विधेयमिति ॥ ७ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—वीतरागविभु श्रीजिनेश्वरदेव की भव्य मूर्ति-प्रतिमा के दर्शन-पूजनादि के समय देवाधिदेव वीतराग विभु की स्तुति, प्रार्थना, स्तवन और गुणगानादि करना भावपूजन तथा भावधर्म भी माना जाता है। यह कथन नितान्त सत्य है—सन्देह का यहाँ स्थान नहीं है। क्योंकि पवित्र चरित्र के धनी, परमात्मनिष्ठ, महर्षि, मुनि-योगी एवं मनीषियों के द्वारा सेवित, अनुभूत तथा वर्णित है। इसका सम्यक् प्रकार से अनुशीलन करके निर्मल-चित्त भक्तों को नित्य जिनमूर्त्तिपूजा द्रव्य तथा भाव सहित अवश्य करनी चाहिए ॥ ७ ॥

[८]

मूलश्लोकः—

सुरम्ये संस्थाने विगतभयसारेऽतिसुखदे ,
सुमूर्त्तिः संस्थाप्या विविधविधपूजादिककरैः ।
भवेत् तस्मान्नित्यं सरससकलं जीवनरसः ,
इहत्यं सत्सौख्यं मिलति परमं स्वव्ययपदम् ।

संस्कृतभावार्थः—रमणीये सुखदे प्रशान्ते स्थाने भगवतः श्रीवीतरागदेवस्य मनोहरमूर्त्तिः नानाविधपूजादिकं विधाय श्रीजैनागम - शास्त्रोक्तरीत्या अंजनशलाका - प्राणप्रतिष्ठा स्थापितव्या। एवमनुष्ठानेन सकलमपि मानवजीवनं सफलं सरसं सम्पद्यते। मनुष्यः सांसारिकं सौख्यं समधिगम्य दुर्लभं महता प्रयासेन प्राप्यं परमपदमविनश्वरं जन्मजरा-मरणदुःखत्रयशून्यं मोक्षमपि लभते ।। ८ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—रमणीय, सुखद तथा प्रशान्त स्थान पर श्रीजिनेश्वर भगवान को सुमूर्त्ति की स्थापना शास्त्रोक्त विविध विधि-विधानपूर्वक हर्षोल्लास से करनी चाहिए। ऐसा करने से सम्पूर्ण मानव-जीवन सफल एवं सरस विघ्न-बाधारहित बन जाता है। मनुष्य सांसारिक सौख्य को प्राप्त कर, पश्चात् सदा अविनाशी अक्षय आधिदैविक, आधिभौतिक, आधिदैहिक तीनों प्रकारों के दुःख से रहित परमपद-मोक्ष को भी सहज रीति से प्राप्त करता है ।। ८ ।।

[९]

☐ **मूलश्लोकः**—

स्वकीयान्तर्ध्वान्तं शमयितुमलं वाञ्छसि यदि ,
तदा शास्त्रैः सिद्धा प्रथितमुनिराजैरधिगता ।
गुणागाराधारा परमसुखसौविध्य - सरिता ,
सुमूर्त्तिः स्फूर्तिश्चाखिलसरसभावैः श्रय सदा ।। ९ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे भव्यपुरुष ! यदि त्वमादिकालात् अन्तश्चेतसि परिव्याप्तमज्ञानरूपिणमन्धकारं विनाशयितुमिच्छति तदा श्रीजैनागमैः शास्त्रैः प्रमाणितां सुसिद्धाम्, स्वनामधन्यैर्विद्वन्मूर्धन्यै - र्मुनिराजैः सेवितां गुणागारस्वरूपिणीं परमसुखसुविधा-सरितामिव स्फुरन्तीं जिनमूर्त्ति सादरसरसभावैराश्रयः ।। ९ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे भव्यपुरुष ! यदि तुम अनादि काल से विविध जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित अज्ञान रूपी अन्धकार तथा कर्म रूपी मल को सर्वदा सर्वथा दूर करने को अभिलाषा रखते हो तो तुम्हें श्रीजैनागमादि शास्त्रों से प्रमाणित, स्वनामधन्य विद्वन्मूर्धन्य विद्वान् मुनिराजों द्वारा सेवित-आराधित गुण की आगार, परमसुख सुविधा की सरिता के समान स्फूर्तिमयी श्रीजिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा का सादर उत्तम भावों से आश्रय अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।। ९ ।।

[१०]

□ **मूलश्लोकः**–

कुमार्गाणां हेतुं क्षमणशमनादौ सुखकरी ,
सदा ध्येया गेयाऽऽगमनिगमसारैः सुवचनैः ।
सदार्च्या वन्द्या च प्रथितविधिभिर्मङ्गलमयैः ,
सुमूर्त्तिः स्फूर्तिश्चाखिलसरसभावैर्विमनुताम् ।। १० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे भव्यात्मन् ! एषा श्रीजिनमूर्त्ति-पूजा सर्वेषामपि कुमार्गाणां मूलं कारणं निरोधयति। दुरितानां शान्त्यर्थमपि सुखावहा वर्तते। अतो भवता श्रीजैनागमशास्त्रोक्तैः सूक्तैः श्रीजैनाचार्यप्रवरैः प्रवर्तितैः सरसैः शास्त्रोक्तवचनैः सरसभावैश्च जिनमूर्त्तिः-जिनप्रतिमा स्वीकार्या। तथा च पूर्वोक्तैरेव सुवचनैः ध्येया, गेया, अर्चनीया-पूजनीया, वन्दनीया चेति ।। १० ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे भव्यात्मन् ! 'यह **श्रीजिनमूर्त्ति-पूजा**' सभी प्रकार के कुमार्ग के मूल कारणों का रोधन करती है। पापकर्मों का उपशमन-शमन करने में भी सुखकारी है। अतः आपको आगमशास्त्रों तथा आचार्यों द्वारा प्रतिपादित प्रवर्त्तित सिद्धान्तों तथा प्रामाणिक वचनों से मूर्त्ति-प्रतिमा को स्वीकार करके, श्रीजैनागम-शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार ही श्रीजिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा का सदैव ध्यान, संकीर्त्तन, अर्चन-पूजन एवं वन्दन-नमस्कार करना चाहिए ।। १० ।।

[११]

☐ **मूलश्लोकः**–

यदीया सत्सेवा शमशिवसुखं यच्छति सदा ,
असारे संसारे विविधविधि-विद्या-बलमपि ।
सुसौख्यं सौभाग्यं सततमभिरामं गुणगणां ,
सुमूर्त्तिः स्फूर्त्तिश्चानुपमशुभभावैः श्रय सदा ।। ११ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे संसारिजीव ! यस्याः स्फूर्तिमत्या श्रीवीतरागदेवस्य मूर्त्तेः सम्यग् अर्चना, सेवा-पूजा अस्मिन् दुःख-सन्दोह-समाकुले अस्मिन् असारे संसारेऽनेक-विद्या बलं परमां शान्ति सुखं सौभाग्यं सौख्यं सदा सुन्दरां गुणावलीं ददाति। तां स्फूर्तिमतीं श्रीजिनेश्वरमूर्त्ति अनुपमशुभभावेन सर्वदाऽऽश्रय ।। ११ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे संसारी जीव ! वीतराग श्रीजिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा की सत्सेवा, पूजा, अर्चना, स्तुति-स्तवना-गुणगान इत्यादि इस दुःखद असार संसार में अनेक प्रकार की विद्या, सम्बल-शक्ति, परमशान्ति, सुख, सौभाग्य तथा सौख्यादि प्रदान करते हैं। अतः तुम उस जिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा का आश्रय पूर्ण श्रद्धा, विश्वास एवं निष्ठा के साथ करो ।। ११ ।।

[१२]

☐ **मूलश्लोकः**—

असारे संसारे भवति बहुधा दुःखसमयः ,
समे जीवाश्चान्ते सुखमभिलषन्तीति विदितं ।
कृते यत्ने शाश्वन्नहि सुलभते सौख्यनिचयं ,
ऋतेऽर्हत् सद्भक्ति कथमपि जनो भौतिकरतः ।। १२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे सांसारिक - आत्मन् ! परिणामतोऽसारे संसारेऽधिकांशतः समयो दुःखदावादलेन समाक्रान्तो भवति । सर्वे जीवाः सुखं वाञ्छति न तु दुःखम् । अहं विश्वसीमि यद् भौतिकवादी जनः श्रीजिनमूर्त्तिपूजां भक्तिं विना कदापि सौख्यनिचयं शाश्वत् सुखञ्च न प्राप्नोति ।। १२ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे सांसारिक आत्मन् ! वस्तुतः इस असार संसार में अधिकांश समय दुःख की कराल अग्नि से आक्रान्त तुल्य व्यतीत होता है । संसार के सभी जीव सुख चाहते हैं, तथा दुःख किसी को अभीष्ट नहीं है । मेरा विश्वास है कि श्री अरिहन्त भगवन्त की अर्चना, भक्ति के बिना भौतिक पदार्थवादी कभी शाश्वत सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है ।। १२ ।।

[१३]

☐ **मूलश्लोकः**—

कुबुद्धीनां शुद्धिं सहजनिजदृष्टया प्रकुरुते ,
भवाब्धौ भीतानां भ्रमितविषयासक्तमनसाम् ।
सुशान्तिं निष्क्लान्तिं विगतभवभ्रान्तिं वितनुते ,
यदीयां सान्निध्यं श्रयतु सततं तां सुखकरीम् ।। १३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे भव्यात्मन् ! श्रीजिनेश्वरदेवस्य मूर्त्तेः सान्निध्यमनुष्ठानं वा कुबुद्धिं शोधयति। भवभ्रान्तानां चंचलचित्तवृत्तीनां मानसं सुशान्तं निष्क्लान्तं निर्भ्रान्तं वितनोति। अतः सर्वतो भावेन सर्वेष्टसाधिकां सकल-क्लेशक्लान्ति-भवभ्रान्तिविनाशिनीं सत्तत्त्वप्रकाशिनीं तां जिनमूर्त्तिमाराधयतु आश्रयतु ।। १३ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे भव्यात्मा ! श्रीजिनेश्वरदेव की मूर्त्ति का सान्निध्य तथा आराधन दुर्बुद्धियों की बुद्धि को प्रथमदर्शन में ही शुद्ध परिमार्जित कर देता है। संसार-सागर में भयभीत तथा चञ्चल वृत्तिवाले मनुष्यों के मानस को भी सुशान्त, प्रशान्त, निष्क्लान्त एवं निर्भ्रान्त कर देता है। समस्त कष्टों तथा आपद्-विपद् का विनाश करने वाली परमसुखकारी श्रीजिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा का श्रद्धापूर्वक आश्रय ग्रहण कर आराधन करो ।। १३ ।।

[१४]

☐ **मूलश्लोकः**–

प्रभोऽयं संसारो जननमरणाताप - जनकः ,
बहिर्दृष्टो रम्यः प्रियजनवरालापभरितः ।
अजानन् चास्यान्तं कटुतरविकारं जडतया ,
प्रविष्टोऽस्मिन् जीवो भ्रमति तव पूजा विरहितः ।। १४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे जिनेश्वर प्रभो ! अयं संसारो जन्म - मृत्यु - पीडाना - मुत्पादकः । आत्मीय - जनानां मृदुसम्भाषणादिना बाह्यरूपेणैव रमणीयः प्रतीयते । अनन्ताज्ञानान्धकारतया जीवोऽस्य कटुतरं परिणामं अजानन् अत्र प्रविष्टो भवति तथा च तव पूजाविरहितः सन् नाना-प्रकारकं कष्टमनुभवन् अनेकधापीडितः जन्म-मृत्यु-पीडा संयन्त्रमयेऽस्मिन् संसारे भ्रमतितराम् ॥ १४ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे जिनेश्वर प्रभो ! यह संसार जन्म-मृत्यु-पीड़ा का जनक है। आत्मीयजनों के मृदु सम्भाषण एवं व्यवहार से बाह्य रूप में रमणीय प्रतीत होता है। अज्ञान के आवरण के कारण जीव-आत्मा इसके कटु परिणाम को न जानकर इस संसारचक्र में अनेक प्रकार से पीड़ित, दुःखित एवं खिन्न होते हुए भी आपकी पवित्र पूजा, आराधना नहीं करने के कारण इसी संसार-चक्र के पीड़ामय विधान में वारंवार घूमता रहता है ॥ १४ ॥

[१५]

☐ **मूलश्लोकः–**

यदा जाताः सर्वे विगतमदमोहा जिनवराः ,
सुमेरौ तान् सर्वानमरपतयो द्राक् समनयन् ।
समानर्चुर्भक्त्या स्नपनविधिना भूरिकुसुमैः ,
गुणग्रामैः रम्यैः स्तवननिकरैः श्रोत्रसुखदैः ॥ १५ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–प्राचीनानां प्रामाणिकानां शास्त्राणां परिशीलनेन विज्ञायते। यत्-यदा रागद्वेष-वियुक्तानां मदमोहाद् विकारविमुक्तानां स्वनामधन्यानां विश्वोपकार-निरतानां सर्वेषां जिनेश्वराणां क्रमशो जन्म-कल्याणकं सम्पद्यते तदा चतुःषष्टिः (६४) इन्द्राः सम्भूयागत्य भगवन्तं सुमेरुपर्वतं नयन्ति। तत्र पाण्डुकम्बला नाम्नीं शिलामधिसंस्थाप्य प्रथमं स्नात्रमारभन्ते। तदनन्तरं द्रव्यपूजनं भावपूजनञ्च कुर्वन्ति। द्रव्यपूजने–अनेकानेक वर्ण-रस-सौरभ-समुद्भासितैः सुमनोहरैः सुमनैः, शीतलैश्चन्दनैः पूजयन्ति। भावपूजने - अकारणकरुणा-वरुणालयानां विश्वजनीनानां विश्ववन्द्यानां परदुःख-कातराणां प्रभूणां श्रवणपुटनिवेदयानि गुणग्रामाणामलौकिक-स्तवन-सङ्कीर्तनादीनि कुर्वन्ति ॥ १५ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–प्राचीन एवं प्रामाणिक शास्त्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि–जब वीतराग विश्वोपकारी श्री अरिहन्त भगवन्तों का जन्मकल्याणक होता है, तब चौंसठ इन्द्र देवलोक से आते हैं तथा शिशु-बालक के रूप में रहे हुए उन प्रभु को शक्रेन्द्र अपने पंच रूप युक्त दिव्य सन्मान के साथ सुमेरुपर्वत पर ले जाता है। वहाँ पाण्डु-कम्बला नामक शिला पर चौंसठ इन्द्र आदि क्रमशः

स्नात्रपूजन द्रव्य तथा भाव दोनों ही विधि से करते हैं ॥ १५ ॥

[१६]

□ **मूलश्लोकः—**

ततो मातुः पार्श्वे मृदुलशयने न्यस्य विधिवत् ,
द्वयं नत्वा गत्वा सुरसहितनंदीश्वरवरं ।
समानर्चु - र्नित्यां शुभजिनवराणां सुप्रतिमां ,
इयं रीतिर्नित्या किमिह जिनशास्त्रेन सुलभा ॥ १६ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—स्वर्णमेरुशिखरे पाण्डुशिलायां श्रीजिनेश्वरस्य भगवतः स्नात्रं विधाय शक्रेन्द्रो श्रीजिनेश्वर-देवं मातुः समीपमानयति । तथा चासौ पूर्वप्रदत्ताव-स्वापिनीं निद्रां प्रभोः प्रतिबिम्बं चापनयति । सुमनादपि मृदुलतरशयनीये विधिपूर्वकं प्रभुं स्थापयित्वा साम्बं प्रभुं प्रणम्य सपरिवारं श्रीनन्दीश्वरद्वीपं प्रयाति । तत्र च द्विपंचाशद् जिनालये अष्टाह्निका - महोत्सवं प्रतनुते । रीतिरियं श्रीजैनशास्त्रे प्रचलिता नित्या शाश्वती सुलभा चेति ॥ १६ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—स्वर्णमय मेरुपर्वत के शिखर पर आई हुई पाण्डुशिला पर चौंसठ इन्द्रों आदि के द्वारा श्रीजिनेश्वर भगवान का प्रथम स्नात्र-पूजन करने के

पश्चात् शक्रेन्द्र प्रभु को सादर बहुमानपूर्वक माता के पास लाते हैं, तथा पूर्व प्रदत्त अवस्वापिनी निद्रा एवं प्रभु के बिम्ब का अपनयन करके विधिपूर्वक प्रभु को अत्यन्त कोमल मृदुल शय्या पर सुलाकर माता सहित प्रभु को वन्दनादिकर सपरिवार श्रीनन्दीश्वर द्वीप में जाकर प्रभु के जन्मकल्याणक निमित्तक अष्टाह्निका महोत्सव करते हैं। यह रीति जैनशास्त्रों में प्रचलित, नित्य एवं सुलभ है ॥ १६ ॥

[१७]

□ **मूलश्लोकः—**

चतुर्भिर्निक्षेपै - र्जगति जनतानन्दजनकैः ,
सदा ध्यानैर्ज्ञानै - रमरपति - पूज्यैर्गणधरैः ।
तथा दिव्यैर्देवैर्विमलमतिभि - र्विश्वमहितैः ,
अजर्या सद्वर्या जिनपतिसपर्य्या विरचिता ॥ १७ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—सुरपतिपूज्यै-र्भगवतो गणधरैः लब्धप्रतिष्ठैर्विद्वद्भिश्च अस्मिन् संसारसागरे निमज्जितेभ्यो मनुष्येभ्यो नाम-आकृति-द्रव्य-भाव नामकैश्चतुर्भिर्निक्षेपै-रर्हतां पूजा प्रकाशिता। एषा जिनपतिपूजा त्रिलोकीं पातुं पवित्रीकर्तुं च समर्था। निक्षेपस्तावदन्यस्मिन् अन्यारोपः। जिनमूर्त्तिः—जिनप्रतिमा, वस्तुतो नास्ति

जिनस्वरूपा तथापि प्रतिनिधिरूपा विराजते। एतेषु चतुर्षु निक्षेपेषु एकैकमुपास्यम्। एकतरस्यापि नोपेक्षा कर्त्तव्या। एकस्याप्युपेक्षया सम्भवति सम्यक्त्वस्य हानिः। नैतन्मात्रमेव प्राप्तसम्यक्त्वस्यापि उच्छेदापत्तिरित्यप्यवधेयम् ॥ १७ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–देवाधिराज शक्रेन्द्रादि देवों से सदा सेवित ऐसे देवाधिदेव श्रीजिनेश्वर भगवन्तों ने श्रुतकेवली गणधर महाराजाओं तथा तत्त्वदर्शी विद्वानों ने संसार-सागर में बारम्बार डूबते हुए मनुष्यों के अवलम्बन के लिए नाम, स्थापना (आकृति-आकार), द्रव्य तथा भाव नामक चार निक्षेपों से वीतराग श्री अरिहन्त भगवान की पूजा का प्रकाशन किया है। चार निक्षेपों के माध्यम से की गई श्री अरिहन्त भगवन्तों की अर्चना-पूजा तीनों लोकों के लिए कल्याणकारी एवं पवित्र है। इन चार निक्षेपों में से एक की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। किसी निक्षेप की उपेक्षा भी सम्यक्त्व की हानि का हेतु बन सकती है ॥ १७ ॥

[१८]

☐ **मूलसूत्रम्–**

च्युतिर्जैनेन्द्राणां जननमनघं पापशमनम्,
व्रतं दीक्षादानं भवभयहरं मोक्षनिलयम्।
परं यत् कैवल्यं त्रिभुवनविकासेऽप्यतिरविं,
शिवं भद्रं शान्तं सुखमयमनन्तं निगदितम् ॥ १८ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–श्रीतीर्थङ्कर-जिनेश्वराणां पञ्च-कल्याणकानि भवन्ति। कल्याणकं नाम अन्वर्थतां भजते। पञ्चानामपि कल्याणकानां समये विश्वमात्रे शान्तिर्विराजते नरकस्थोऽपि जीवो, प्रभोर्जन्मनि कारागारस्थेव कष्टशून्यो भवति। नात्र मनागपि सन्देहस्यावकाशः। श्रीतीर्थंकरपरमात्मनः पञ्चकल्याणकानि चेत्थम्—च्यवन-जन्म - दीक्षाग्रहण - चतुर्घातिकर्मक्षयरूपकेवलज्ञान - शेष - चतुरघातिकर्मक्षयरूपमोक्षरूपाणि। श्रीतीर्थङ्कर-जिनेश्वराणां पञ्चस्वपि कल्याणकेषु विश्वास्मिन् विश्वे सञ्जायते शान्तिः ॥ १८ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–श्रीतीर्थंकर-जिनेश्वर भगवन्तों के पञ्चकल्याणक लोकविश्रुत हैं। "कल्याणं करोतीति कल्याणकम्" इस प्रकार व्युत्पत्ति के आधार पर 'कल्याण' पद सार्थक है। श्रीजिनेश्वरदेवों के पाँचों कल्याणकों के समय तीनों लोकों में दिव्यप्रकाश एवं सुखशान्ति प्रवृत्त होती है।

प्राचीन काल में राजकुमार के जन्म के समय कारागार (जेलखाना) में से कैदियों को मुक्त कर दिया जाता था, उसी प्रकार नारकी जीवों को भी अल्प समय के लिए कष्ट से मुक्ति तथा सुखोदय होता है। प्रभु के पञ्च-

कल्याणक-च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष के नाम से प्रसिद्ध हैं ।। १८ ।।

[१६]

☐ **मूलश्लोकः–**

क्रमाच्चैतत् सर्वं त्रिभुवनगुरूणाञ्च समये ,
पुराभूतं यास्यत्यमरपतिपूज्यं भवति वै ।
तदाऽऽजग्मुर्देवा जिनवरसमर्योत्सुकधियः ,
क्षितौ कल्याणानां क्षिपति दुरितं पञ्चकमदः ।। १६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–पूर्वोक्तानि पञ्चकल्याणकानि जगद्गुरूणां त्रिभुवननायकानां श्रीतीर्थङ्कर-जिनेश्वरदेवानां पुरा सञ्जातानि, भविष्यति भविष्यन्ति, वर्त्तमानकालेऽपि पूजापरायणैरायोज्येत पूर्वदिवसानुसारेण । सुरेन्द्रदेवा अपि तत्रभवतां भवतां करुणाकल्पद्रुमाणां पूजोत्सुकबुद्धयः पृथिव्यां रत्नानां वर्षां कुर्वन्ति । कल्याणानां परम्परया च मानवाः पाप-ताप-सन्तापरहिता भवन्ति ।। १६ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–पूर्वकथित पाँचों कल्याणक विश्वगुरु त्रिभुवननायक श्रीतीर्थंकर-जिनेश्वरदेव के च्यवन-जन्मादिक कल्याणक के सन्दर्भ में भूतकाल में हुए हैं तथा भविष्यकाल में भी होंगे । श्रीजैनागमशास्त्रों में ऐसा

अनेकबार उल्लेख होने के कारण-पूर्वोक्त कथन अक्षरशः प्रामाणिक है। देवलोकनिवासी शक्रेन्द्रादि चौंसठ इन्द्र-इन्द्राणियाँ तथा अनेक देव-देवियाँ भी श्रीतीर्थंकर भगवन्तों के पंचकल्याणकों के समय हर्ष-प्रकर्ष से आते हैं और अष्टाह्निका-महोत्सव का आयोजन भी भक्तिभावपूर्वक करते हैं। कल्याणकारी विविध रत्नादि वृष्टि से सभी पाप-ताप-सन्तापरहित हो जाते हैं ।। १६ ।।

[२०]

□ **मूलश्लोकः–**

इदं भक्त्या सर्वं विपुलमहिमानं विदधिरे ,
विधायान्ते नंदीश्वरप्रवरदीपेष्वनुययुः ।
ततश्चक्रुः पूजां त्रिभुवनपतीनां प्रतिकृतेः ,
इदं सत्यं मूर्तेर्विदधतु सपर्यां नरवराः ।। २० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–सर्वसुरासुरेन्द्रैः निरुपमभक्तिपूर्वकं महोत्साहेन महोत्सवं वितन्यते। नाऽत्र मनागप्यवकाशः संशयस्य। यतो हि श्रीजिनागमप्रमाणसिद्धं यत् स्वर्ग-निवासि सर्वसुरासुरेन्द्राः प्रति श्रीजिनकल्याणकानन्तरं सुप्रसिद्धश्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशद् जिनमन्दिरे जिन-मूर्त्तीणां-प्रतिमानां पूजां, अष्टाह्निकामहोत्सवमायोज्य सम्पूज्य च निजविमानैः प्रयान्ति देवलोकम्। अतो हे

भव्यजीवाः ! आत्मकल्याणभावना चेत् सर्वदा सर्वथा सुखप्रदायिनीं श्रीजिनेश्वरमूर्त्ति - जिनप्रतिमां भक्त्या पूजयन्तु ।। २० ।।

ॐ **हिन्दी अनुवाद**–सुरासुरेन्द्रों ने स्वकीय भक्ति, शक्ति एवं दिव्य ऋद्धि-सिद्धि के अनुसार प्रत्येक श्रीजिनेश्वरदेव के कल्याणक महोत्सवों का आयोजन किया है। यह बात पूर्ण प्रामाणिक है एवं श्रीजैनागमादिक अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध है। देव श्रीनन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टाह्निका महोत्सव का आयोजन करते हैं तथा श्रीजिनमूर्त्ति-प्रतिमाओं का वन्दन-पूजन करके अपने विमान से देवलोक को प्रयाण करते हैं। हे भव्यजीवो ! यदि अपनी आत्मा का कल्याण चाहते हो तो सर्वदा सुखप्रदायिनी श्रीजिनेश्वर मूर्त्ति-प्रतिमा का भक्तिपूर्वक पूजन करो ।। २० ।।

[२१]

☐ **मूलश्लोकः**–

सुराद्रौ सा देवैरवधिमतिभिः प्राग्विरचिता ,
विलुप्ता मोहान्धैर्विगलितविवेकैः कुपुरुषैः ।
कियन्तो नो मुक्ता भवगुरुसुपूजां विदधतः ,
अतो भव्यैः कार्या शिवसुखनिधानैकजननीम् ।। २१ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–प्राचीनसमयेऽवधिज्ञानधारिभिर्देवेन्द्रैर्जिनेन्द्राणां पूजा सम्पादिता। प्रवृत्ता च लोकेऽपि, किन्तु मध्ये महामोहाज्ञानान्धकार - विवेकशून्यैर्मूढजनैर्विलोपिता। इत्थं कृतप्रयासेऽपि शाश्वतिकं तत्त्वं सर्वथा न विलुप्यते। अवलोकयन्तु भवन्तः स्वयमेव यत् अधुनापि श्रीजिनेश्वरपूजा प्रचलति। त्रयाणामपि लोकानां परमपूज्यश्रीजिनेश्वरदेवानां पूजका अगणिताः परमानन्दपदमवाप्तवन्तः। अतः सुखेच्छुभिः शिवेच्छुभिश्च भव्यपुरुषैः श्रीजिनपूजाऽवश्यमेव विधातव्येति ॥ २१ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–प्राचीन काल में अवधिज्ञानधारी देवेन्द्रों ने परमपूज्य श्रीजिनेश्वर देवों की पूजा विधिपूर्वक की है तथा यह पूजा लोकप्रसिद्ध अतिप्राचीन भी है। किन्तु मध्यकाल में कुछ अज्ञानी अविवेकी मूढ़जनों ने इसे विलुप्त करने का असफल प्रयास किया है। सत्य, शाश्वत तत्त्व कभी छिपा नहीं रह सकता। इसका प्रमाण प्रत्यक्ष है कि श्रीजिनेश्वर भगवान की पूजा आज भी प्रवृत्त है। तीनों लोकों के आराध्य श्रीजिनेश्वरदेव की पूजा करने से असंख्यजन परमसुख, परमपद प्राप्त कर चुके हैं। अतः भविजनों को जिनपूजा अवश्य करनी चाहिए ॥ २१ ॥

□ **मूलश्लोकः–**

अयं लोकोऽनादिः प्रकृति-सुभगो वास्य नियमः ,
युगादीशेनादौ विमलमतिना तेन रचितः ।
जनानां भूत्यर्थं नियतववहारोऽमृतमयः ,
जिनेन्द्राणां पूजा भवभयभिदा तेन कथिता ।। २२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–प्रवाहावच्छेदेनायं संसारोऽनादिः, सरलस्वभावश्च । जनसाधारणनिवासस्थानं, किन्तु समुचित-व्यवस्थायाः अभावेन मत्स्यगलागलन्यायः प्रवर्त्तते । अतएव लोकव्यवस्थाकुशलेन विश्वपितामहेनादिनाथेन प्रजानां हितार्थं यथा सर्वा समीचीना व्यवस्था व्यावर्णिता तथैव श्रीमद् जिनेश्वराणां पूजाऽपि व्यवहारनयेन प्रोक्ता । अतो हे भव्यजनाः ! भवभ्रमणान्तकारिणीं जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमां श्रद्धया, विश्वासेन निष्ठया मनोयोगेन च पूजयन्तु ।। २२ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–प्रवाह रूप से यह संसार अनादि है, सरल स्वभाव वाला है, तथा जनसाधारण का निवास-स्थान है । किन्तु यदि ठीक व्यवस्था न हो तो अव्यवस्था फैल जाती है । एक व्यक्ति अनीति के बल से अन्य पर हावी होने लगता है । जैसे बड़ी मछली छोटी मछली

पर हावी हो जाती है। अतः समुचित व्यवस्था के जन्मदाता श्रीआदिनाथ भगवान ने जैसे अन्य असि, मसि और कृषि की व्यवस्थाओं का सम्पादन किया ठीक उसी प्रकार श्रीजिनपूजा को भी व्यवहार नय का आवश्यक अंग माना है। अतः हे भविजनो! तुम पूर्ण श्रद्धा, विश्वास एवं मनोयोग से जिनपूजा करो। क्योंकि यह भवभय दूर करने वाली है ॥ २२ ॥

[२३]

मूलश्लोकः—

न यावत् लोकोऽयं त्रिभुवनगुरोरर्चति पदं,
भवं भ्राम्यन् दृष्टः पवननिहतो वारिदनिभः।
अतो भक्ताः शुद्धा विमलगतिनीरेणसुभगां,
विमुच्यान्यत् कार्यं जिनवरसपर्यां विदधते ॥ २३ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—यावत् मानवाः त्रयाणामपि लोकानां पूज्यमानानां श्रीजिनेश्वराणां पावनचरणकमलानां पूजां न कुर्वन्ति, तावत् ते चतुर्षु गतिषु, चतुरशीतिलक्ष-परिमिताषु योनिषु भ्राम्यन्ति। गगने पवनाहतजलधरा इव। अतएव विवेकजलस्नाता इव भक्ता जगज्जालजटिलं संसारसंवर्धकं कर्मजालं विमुच्य सर्वस्वदातुं प्रभुं मनोवाक्कायेभ्यः सततं पूजयन्ति समर्चयन्ति च ॥ २३ ॥

✻ **हिन्दी अनुवाद**—जब तक मनुष्य त्रिलोकपूज्य श्रद्धेय श्रीजिनेन्द्रदेवों के चरणारविन्द की पूजा, अर्चना नहीं करते हैं तब तक वे आकाश में वायुवेग से आहत मेघ की तरह इस संसार में मनुष्यादि चार गतियों में तथा चौरासी लाख जीवायोनियों में भ्रमण करते रहते हैं। अतएव निर्मल ज्ञान वाले ऐसे भक्तजन असार संसार संवर्धक कलुषित कर्मजाल का परित्याग करके, सर्वस्व प्रदान करने में समर्थ ऐसी श्रीजिनेश्वर भगवान की पूजा मन, वचन और काया से करते हैं ।। २३ ।।

[२४]

□ **मूलश्लोकः**—

जलस्नानं कृत्वा जनयति विशुद्धि हि वपुषः ,
प्रभोरर्चा तद्वत् हरति मनसो मोहकलिलम् ।
विभोः पूजा द्वेधा बुधजनमरालैर्निगदिता ,
विशुद्धैः सद्द्रव्यैरमितसुखदैर्भावनिकरैः ।। २४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—पौनःपुन्येन जलस्नानेन केवलं शारीरिकमलशुद्धिः भवितुमर्हति, न चाभ्यन्तरमलशोधनम् । अनादिकालिकस्यान्तःकरणसञ्चितमलसंशोधिका सर्वसमर्था प्रभोः पूजैव विराजतेतराम् । अतः प्रभोः पूजा श्रेष्ठतमा । सैषा प्रभोः पूजा द्रव्य-भावभेदाभ्यां द्विधा

मता बुधजनमरालैः । द्रव्यपूजाः नामसरससुभगसुगन्धितैर्द्रव्यैः, भावपूजाश्च अनन्ताखण्डानन्दजनकस्य प्रभोर्मङ्गलमयध्यान-गुणगान-स्तवनादिभिरायोज्यन्ते सुधिभिः ।।२४।।

❋ **हिन्दी अनुवाद**–मनुष्य चाहे कितनी बार स्नान करके पवित्र होना चाहे तब भी मात्र शारीरिक शुद्धता ही सम्भव है। किन्तु अनादि काल से विविध प्रकार के अन्तःकरण से सम्पृक्त अशुद्धि, कर्मकषायों का शोधन तो प्रभुपूजन से ही सम्भव है। श्रीजिनेश्वर प्रभु की पूजा को ज्ञानी महापुरुषों और विद्वानों ने द्रव्यपूजा तथा भावपूजा के भेद से दो प्रकार की कहा है। ये दोनों प्रकार की पूजायें सर्वस्व प्रदान करने में पूर्णतया समर्थ हैं।। २४ ।।

[२५]

□ **मूलश्लोकः**–

विरक्ता ये भव्या विमलमतयो विश्वमहिताः ,
विभेदं जानन्तो निगमनयनेनैव सततम् ।
इतो वै जायेत भ्रमणफलकं बन्धनमलं ,
रमन्ते तां हित्वा समरसमये चात्मनि शिवे ।। २५ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–पूजाद्वये को भेदः ? इति विषये

श्रीजैनागम-पारदर्शिनो विरक्ताः विवेकविज्ञानभासुराः विद्वांसो महान्तः सन्तः सम्यक्प्रकारेण जानन्ति । द्रव्यपूजा सुखद-देवादिगतिः प्रदात्री । भावपूजा तु भवभ्रमण-विनाशिनी, भव्यात्मनोऽखण्डानन्दप्रदात्री, अष्टाविधकर्म-कलापलवित्री परमसुख-प्रदात्री च वर्त्तते । अतएव ज्ञानिनः सर्वदा भावपूजायां तन्मयाः भवन्ति ।। २५ ।।

❋ **हिन्दी अनुवाद**–द्रव्यपूजा तथा भावपूजा में क्या भेद है ? इस रहस्य को श्रीजैनागम-शास्त्रों के मर्मज्ञ विवेकविज्ञान से समुल्लसित महान् मुनिमहात्मा, सन्तपुरुष एवं विद्वान् भलीभाँति समझते हैं । द्रव्यपूजा सुखद-देवगति आदि के सुख प्रदान करती है तथा भावपूजा भवबन्धन का विनाश कर आत्मा का सुन्दर प्रकाश तथा अखण्ड आनन्द प्रकट करती है और अष्टविध कर्मजालों का समूल उच्छेद करती है । अतएव ज्ञानीजन सर्वदा भावपूजा में ही मग्न-लीन रहते हैं ।। २५ ।।

[२६]

☐ **मूलश्लोकः–**

जलं पुष्पं धूपं न च मधुरनैवेद्यमक्षतं ,
घृतं नो वा दीपं निरुपमफलं चन्दनशुभम् ।
कर्पूरं कस्तूरीं न च मलयजं वासितवनं ,
समीहन्ते भक्ताः सुभगपरिणामैस्तमयजन् ।। २६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—भावपूजायां जल-पुष्प-धूप-नैवेद्य-अक्षत-घृत-दीप-फल-कर्पूर-कस्तूरी - चन्दनादीनां पदार्थानामपेक्षा न भवति, किन्तूत्तममनसः सुभगपरिणामोऽपेक्ष्यते। अतएव ज्ञानिनो भक्ताः परिणामं संशोध्य दत्तावधानेन निष्ठया मनोयोगेन श्रद्धया ज्ञानेनात्मविज्ञानेन जपतपोभावेन परमशान्तेन चेतसा, दान्तेन च स्वरूपेण भावपूजनं कुर्वन्ति ।। २६ ।।

❋ **हिन्दी अनुवाद**—भावपूजा में जल, पुष्प, धूप, नैवेद्य, अक्षत, घृत, दीप, फल, कर्पूर, कस्तूरी तथा चन्दन इत्यादि पदार्थों की किञ्चिद् मात्र भी आवश्यकता नहीं रहती; अपितु इसके लिए सुभग मानसिक एकाग्रता अपेक्षित है। अतएव ज्ञानीजन सतत चंचल-चपल मन को विशुद्ध करके एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय निर्विकार भाव से श्रद्धा, निष्ठा तथा मनोयोग से ज्ञान एवं आत्मविज्ञान से जप-तप इत्यादि के द्वारा भावपूजन में मग्न-लीन रहते हैं ।। २६ ।।

[२७]

□ **मूलश्लोकः**—

न वा यस्यां दीपो घृतलवनिपातो न च पुनः,
न वा द्रव्याऽऽकाङ्क्षा पुनरपि न द्रव्यान्तररुचिः।
न वा जैनागारं न च पुनरहो बिम्बमनघं,
यजन्ते विद्वान्सो विमलहृदयं तं जिनवरम् ।। २७ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–भावपूजायां न दीपस्यावश्यकता, न सततं घृतबिन्दुप्रक्षेपस्य, न चान्येषां द्रव्याणामपेक्षा, द्रव्यान्तररोधोऽपि नैव । जिनालयस्य जिनप्रतिमायाः वा अपेक्षा नास्ति । अतो ज्ञान-विज्ञाननिलयाः विशुद्ध-बोधानन्द – विभूतयो निर्जितेन्द्रिय – ग्रामाः, आत्मारामाऽऽरामस्मरणोत्सुका जिनमयाः सन्तो जिन-माराधयन्ति ।। २७ ।।

✱ **हिन्दी अनुवाद**–भावपूजा में न तो दीपक की आवश्यकता होती है, न घृतबिन्दु-प्रक्षेप की। अन्य सुगन्धित पूर्वकथित द्रव्यादिक की आवश्यकता भी नहीं रहती है। यहाँ तक कि, जिनमन्दिर-जिनालय तथा जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा की भी आवश्यकता नहीं होती है। अतः ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित स्थितप्रज्ञ ज्ञानीजन चपल बाह्यमुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर आत्मा के रम्य उद्यान में रमण करने वाले क्रोध-मान-माया लोभ रूपी कषायों को जीतने वाले, कर्ममल को प्रक्षालित करके जिनमय होकर श्रीजिनेश्वरदेव की आराधना करते हैं। यहाँ यह स्मर्तव्य है कि यह भावपूजा परमविशिष्ट ज्ञानियों के द्वारा ही होती है। अल्पज्ञों तथा साधारण-जनों, विषयासक्तों द्वारा कदापि सम्भव नहीं है ।। २७ ।।

□ **मूलश्लोकः–**

तथैवान्या रम्या भविजनमरालैः परिचिता ,
विधीयन्ते भव्यै – र्नवनवरसै – र्द्रव्यनिकरैः ।
अपारे संसारे विततनिगमाब्धौ निगदिता ,
निबोधापेतानां शमसुखविधानाय सुगमा ।। २८ ।।

संस्कृतभावार्थः–भावपूजेव रमणीया द्रव्यपूजाऽपि भव्यजनैः नीरक्षीरविवेकिभिः आदृता । सा च द्रव्यपूजा सांसारिकमनुष्यैः साहित्यशास्त्रे वर्णितैः सरसैः प्रतिपल-नवीनैः रसैः, द्रव्यसमूहैश्च वितन्यते । एषा द्रव्यपूजापि न काल्पनिकी प्रशस्तेषु जैनागमेषु मान्येषु शास्त्रेषु प्रामाणिक-रूपेण प्रोक्ता–संसारे सागरे निमज्जमानानां जनानां सज्ज्ञानरहितानां छद्मस्थानां कृते सुगमा सुलभा शमसुख-विधात्री च वर्त्तते ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–सर्वोत्कृष्ट भावपूजा की भाँति ही द्रव्यपूजा भी नीरक्षीरविवेकी श्रीगणधर महाराजादि के द्वारा आदृत है । यह द्रव्यपूजा साहित्यशास्त्र में वर्णित विविध रस, छन्द, गीति तथा अनेक द्रव्यसंसाधनों से सम्पन्न होती है । यह द्रव्यपूजा भी कोई काल्पनिक नहीं है । क्योंकि श्रीजैन आगमों तथा प्रामाणिक शास्त्रों में इसके

पद-पद पर उल्लेख हैं। यह पूजा अपार संसार रूपी समुद्र में डूबते-उतराते अज्ञानी लोगों के लिए एक सबल आलम्बन है तथा इसकी समाराधना से परमसुख, परमपद की प्राप्ति होती है ।। २८ ।।

[२९]

□ **मूलश्लोकः—**

अमूं भद्रां मूर्त्ति जिनवरगुरोः प्रेक्ष्य सुभगां ,
भजन्ते मोदन्ते नवनवरसैः कोमलधियः ।
परे धीरावीरा विमलमतयोः ये मुनिवराः ,
सदैनां ध्यायन्तो जहति मलिनं कर्मनिकरम् ।। २९ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः—**संसारेऽस्मिन् ये केचन कोमल-विचारशीलाः मनुष्याः भावपूजाधिकारिणो न सन्ति। ते द्रव्यपूजया प्रतिमायां आरोपितमूर्त्तिमन्तं श्रीजिनेश्वरदेवं साहित्यरससम्पृक्तै र्भजनैर्द्रव्यसंसाधनैः समाराध्य तोषं पोषं प्राप्नुवन्ति लभन्ते चेप्सितं फलं परं शान्तिम्। विमल-विचारवन्तः त्यक्तपरिग्रहाः महान्तः सन्तो ज्ञान-ध्यान-विशुद्ध परिणामाः मङ्गलमयगुणग्रामाः जिनालयं गत्वा दर्शनं विधाय भावपूजनैरात्मविशुद्धि सम्पादयन्ति ।। २९ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद—**इस संसार में जो कोमल विचारक

जन, भावपूजा के अधिकारी नहीं हैं, वे द्रव्यपूजा से मूर्त्ति-प्रतिमा में आरोपित मूर्त्तिमान् श्रीजिनेश्वरदेव की पूजा, साहित्यिक-सरस-रस-छन्द-अलंकारों से समुल्लसित स्तुति-स्तवनों, भजनों, गीतिकाओं से तथा द्रव्य-संसाधनों से करते हुए अभिलषित फल एवं परमशान्ति को प्राप्त करते हैं। विमलविचारक निष्परिग्रही साधु महात्मा श्रीजिनेश्वरदेव के नित्यदर्शन तथा भावपूजन करके आत्म-शुद्धि प्राप्त करते हैं ।। २९ ।।

[३०]

☐ **मूलश्लोकः**–

अभव्यो यां दृष्ट्वा व्रजति सहसा भव्यपदवीं ,
सुभव्यो द्राग् भूत्वा विदलयति मोहौघनिगडम् ।
इदं वै प्रज्ञप्तौ चरमजिननाथेन कथितं ,
ततो भक्त्या कार्या जिनवरसपर्या भविजनैः ।। ३० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–पूज्यश्रीव्याख्याप्रज्ञप्तौ अपरनाम श्रीभगवतीसूत्रे चरमजिनेश्वरेण श्रीमन्महावीरस्वामि-तीर्थङ्करेण भगवता प्रोक्तं—ये भावपूजाधिकारिणो न सन्ति तेषां कल्याणाय द्रव्यपूजा (जिनार्चा) कथिता । तत्रैव ये जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमां प्रति श्रद्धावन्तो न सन्ति तेषां विषयेऽपि कथितम् । विशेषजिज्ञासा चेत्

[पूज्य - श्रीभगवती-शतक-सूत्रम्–३, उद्देश–२, सूत्रम्–१४४, १४५, १४६] इत्यादीनि द्रष्टव्यानि। अभव्य-जीवोऽपि जिनमूर्त्तेः–जिनप्रतिमायाः दर्शनं विधाय सुभग-शरीरो भवति। अभव्यात्मा तु दर्शनेनैव अनादिकालतो व्यापृतं कर्मजालं मनोमालिन्यं प्रक्षालयति। अतो भव्यजनैः श्रीजिनेश्वरप्रभोः पूजाऽवश्यमेव विधातव्या ॥ ३० ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–पूज्यश्रीव्याख्याप्रज्ञप्ति अपरनाम श्रीभगवतीसूत्र में अन्तिम चौबीसवें जिनेश्वर श्रीमहावीर स्वामितीर्थंकर भगवान ने स्वयं भावपूजा के अनधिकारी-जनों के कल्याण हेतु तथा श्रीजिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा में श्रद्धा न रखने वाले अज्ञजनों को सावधान किया है।

[यदि इस विषय में विशेष अन्वेषण की जिज्ञासा हो तो पूज्य श्री भग० श० सूत्र–३, उ० २, सूत्र १४४ से १४६ तक सविस्तार देखिये] अभव्य व्यक्ति भी जब जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा के दर्शन से सुन्दरशरीरी हो जाता है तब भव्यात्मा तो दर्शन-पूजन से अनादिकाल के कर्मजाल एवं मन की अशुद्धि को सहज रूप से प्रक्षालित कर लेता है ॥ ३० ॥

□ **मूलश्लोकः–**

इयं मूर्त्तेरर्चा जडमति - जनैरेव रचिता ,
महत्त्वं यत् तस्यास्तदपि च महामोहजटिलम् ।
न या ब्रूते मूर्त्तिः किमपि न विधत्ते जडमयी ,
कथं कार्या पूजा विमृशतुजनो मीलितदृशा ।। ३१ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–मूर्त्तिपूजायाः विषये आक्षेपवादिनो वदन्ति एवं यन् मूर्त्तिपूजा जडबुद्धिभिरेव प्रतिपादिता । अस्या महत्त्वमपि जाड्यजटिलं, अप्रासंगिकं तथा अतात्त्विकं मन्दमतिभिः परिवर्द्धितमिति । मूर्त्तिरियं स्वयं जडमयी वाक्शून्या च न किमपि करोति न च कर्त्तुं समर्था ? मूर्त्तिपूजायाः विषये कियज्जाड्यमिति विवेकिभिः विचारणीयम् ।। ३१ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–मूर्त्तिपूजा के विषय में आक्षेपवादी विरोधी प्रलाप करते हैं कि—मूर्त्तिपूजा का प्रतिपादन मन्दमतियों ने ही किया है । साथ ही इसके महत्त्व का प्रदर्शन भी बुद्धि के दिवालियेपन का द्योतक है, अप्रासंगिक तथा अयथार्थ भी । यह मूर्त्ति स्वयं जड़-पदार्थ निर्मित है । न बोलती है और न ही कुछ भी करने में समर्थ है । इस मूर्त्तिपूजा के विषय में इनकी मूर्खता का विश्लेषण विवेकीजन स्वयं करें ।। ३१ ।।

□ **मूलश्लोकः–**

इदं पीत्वा प्रोक्तं विषमविकटां मोहमदिरां ,
विवेकभ्रंशाद् वै विगतमतिभिर्मूपुरुषैः ।
मणेः सङ्गाद्लौहं किमु न भजते काञ्चनमयं ,
तथा मूर्त्तेः पूजा जनयति न किं किं जनहितम् ।। ३२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–मूर्त्तिविरोधकानां पूर्वोक्ता कटूक्तिर्निश्चयप्रत्ययमिदं यद्विवेकनाशज्ञानमदिरापाने न संवलिता । अहं मन्ये यत् मूर्त्तिः जडमयी, किन्तु श्रद्धया पूजिता सा किमपि कर्त्तुं प्रभवति हितम् । जडमयेषु पदार्थेषु यादृशीं चमत्कारिणी शक्तिरस्ति, तादृशी शक्तिरस्तु चेतेनेष्वपि नावलोक्यते, किं पार्श्वमणेः संयोगेन साधारणमपि लौहं नैव नृत्यति ? जडरसायनसेवनेन किं भयङ्कर रोगोपशमनं न भवति ?

विवेकिनो विचार्य स्वयं वदन्तु । मूर्त्तिपूजा किं जनहितं न तनोति ?

❀ **हिन्दी अनुवाद**–मूर्त्ति-विरोधकों की पूर्वोक्त कटु उक्ति निश्चित रूप से प्रमाद-मदिरा-पान गर्भित अज्ञता-विलसित है । मैं मानता हूँ कि मूर्त्ति-प्रतिमा जड़ है,

किन्तु श्रद्धापूर्वक पूजने पर वह सर्वस्व प्रदान करने में समर्थ है। जड़पदार्थों में तो जैसी अद्भुत शक्ति दृष्टि-गोचर है, वैसी चेतन में भी नहीं है। क्या पारसमणि के संयोग से लोहा सुवर्णमय नहीं बनता? क्या चुम्बक के प्रभाव से लोहा नाचने नहीं लगता? क्या जड़ रसायन औषधियों से भयंकर रोगों का उपशमन नहीं होता? विवेकी जन स्वयं विचार करें कि मूर्त्तिपूजा क्या-क्या लोकोपकार नहीं करती? ।। ३२ ।।

[३३]

☐ **मूलश्लोकः—**

जगत्यां यत् किञ्चि-न्नयनपथमायाति सुभगं,
प्रणेतारस्तेषां विमलमतयस्ते बुधवराः ।
युगादीशेनादौ प्रथमविधिना प्राणिसुकृते,
पुरैवोक्तं सर्वं प्रथयति जनो नान्यदपरम् ।। ३३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—साम्प्रतं वैज्ञानिक-चमत्कारयुते युगे यत् किञ्चिदपि दृष्टिपथमायाति, तन्न सर्वथा नावीन्यं भजन्ते। पुरापि विशेषज्ञैर्महापुरुषैरागमशा-स्त्रादिषु निगमादिषु च सविस्तारं वर्णितम्। महाभारत-महासंग्रामे तत्रविशिष्टाः प्राचीनवैज्ञानिकाः विनष्टाः। पश्चात् पराधीनकालेष्वपि आर्षवैज्ञानिका किमपि कर्त्तुं

समर्था नाभवन्। यतो हि पराधीनता परमुखापेक्षिता दास्यभावना न कदापि भद्राय शिवाय च कल्पते। सम्प्राप्ते स्वातन्त्र्ये भारतीयवैज्ञानिकानामाविष्कारा: कस्य न श्रुतिपथमायाता:।

इत्थं विश्वव्यवहारप्रवर्त्तकेन श्रीआदिनाथेन-श्रीऋषभदेवेन मूर्त्तिपूजापि मुक्तकण्ठेन समर्थिता। तदनुसारेणैव साम्प्रतमपि लोकव्यवहारो मूर्त्तिपूजा दौ परिलक्ष्यते ॥३३॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–वर्त्तमानकालीन वैज्ञानिक चमत्कार के युग में जो कुछ भी हमें नवीनता दिखाई देती है, वह सर्वथा नवीन नहीं है। प्राचीनकाल में भी विशिष्ट महापुरुषों ने अपने आध्यात्मिक तापसिक चमत्कार से सब कुछ निर्मित किया था; किन्तु महाभारत के महासंग्राम में अनेक आर्ष वैज्ञानिक हताहत हुए, तथा बाद में भी पराधीनता के कारण विकास, वैज्ञानिक-उपलब्धि में बाधायें व्याप्त हुई।

पराधीनता नामक पिशाचिनी कदापि शुभंकरी, प्रगतिप्रदायक नहीं बन सकती। स्वतन्त्रता के पश्चात् अवशिष्ट भारतीय वैज्ञानिकों के भौतिक चमत्कार सर्वविदित हैं। ठीक इस प्रकार **मूर्त्तिपूजा** भी कोई नयी

नहीं है, अपितु विश्वव्यवहार - प्रवर्त्तक - श्रीआदिनाथ-ऋषभदेव द्वारा प्रबल समर्थित है। अतएव लोकव्यवहार का अभिन्न अंग आज भी **मूर्त्तिपूजा** है ॥ ३३ ॥

[३४]

□ **मूलश्लोकः–**

पठेत् पूर्वं शास्त्रं परमपि पुनः पाठयतु वै,
यजेद् देवान् द्रव्यैं निगमविधिना याजयतु सः।
स्वयं देयं ग्राह्यं त्विह निगदितं विश्वगुरुणा,
कथं चेयं पूजा वद किमु कुतर्केण रचिता ॥ ३४ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः–**विश्वव्यवहारप्रवर्तकस्य श्रीआदिनाथ-ऋषभदेवस्य व्यवहारनयो मनोर्व्यवहाराध्यायश्च परस्परं साम्यं भजतेतरम्। प्रत्येकस्य कर्त्तव्यव्यवहारः श्रीआगमशास्त्रादिषु नियमितः। पूर्वं स्वयं शास्त्रादीनामध्ययनं कुर्यात्। पश्चाच्चान्यैरपि कारणीयम्। शास्त्रोक्तविधिना देवानां पूजा स्वयं करणीया कारणीया चान्यैरपि। यथाशक्ति पात्रानुकूलं सादरं-बहुमानपूर्वकञ्च दानं दद्यात्। सम्मानितो भूत्वा दानं ग्राह्यम्। हे कुतर्ककण्टकाकीर्ण! कथय कथमेषा श्रीआगमशास्त्र-सम्मता विज्ञपुरुषैः प्रतिपादिता **मूर्त्तिपूजा** असम्बद्धा कुतर्करचितेति? ॥ ३४ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—इस अवसर्पिणी काल में असि, मसि तथा कृषि का व्यवहार प्ररूपित तथा प्रकाशित करने वाले श्रीआदिनाथ-ऋषभदेव भगवान हैं। व्यवहार-शास्त्रों में मनुष्यों के समस्त कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य निर्धारित हैं। मनुष्य को सर्वप्रथम आगमादि शास्त्रों से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। पश्चात् अन्य को भी प्रतिबोधित करना चाहिए। शास्त्रोक्त विधिपूर्वक स्वयं देवपूजन करना चाहिए तथा अन्य को भी इसमें सत्प्रेरित करना चाहिए। यथाशक्ति सत्पात्र के अनुसार दान देना तथा सम्मानपूर्वक दान लेना भी चाहिए। इस प्रकार व्यवहार-शास्त्रों में मनुष्य के कार्य निर्धारित हैं; तो फिर हे कुतर्क के काँटों में फँसे मूर्त्ति-पूजा विरोधी ! तुम स्वयं कहो कि श्रीआगमशास्त्रसम्मत, विद्वत्प्रतिपादित यह मूर्त्तिपूजा कैसे कुतर्करचना हो सकती है ? ॥ ३४ ॥

[३५]

□ **मूलश्लोकः—**

स्वकीयं सम्मानं कथय किमु नेच्छन्ति मनुजाः,
सुरादीन् चेदर्चेन् मुदितहृदयो भव्यपुरुषः।
कथं तं सम्प्रेक्ष्य ज्वलसि हृदये ज्ञानविकलः,
पतन् गर्तागर्भे कथमिहपरान् पातयसि भो ॥ ३५ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे कुतर्ककण्टकाकीर्ण ! मूर्त्ति-पूजाविरोधिन् ! अस्मिन् संसारे के पुरुषाः स्वकीयं सम्मानं नेच्छन्ति । भक्तिभावपरिलसिता भक्ताः यदि विविधैर्द्रव्यैर्भावैश्च यदा देवार्चनं कुर्वन्ति तदा तव मानसे कथं दाहः प्रदीपते ? स्वयं परनिन्दा-देवनिन्दादिकं कुर्वन् गर्ते पतन् कथम् अन्यान् अपि पातयसि ? इति ।। ३५ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे कुतर्क के काँटों से आबद्ध मूर्त्ति विरोधी ! तुम स्वयं बतलाओ कि, इस संसार में अपना सम्मान कौन नहीं चाहता है ? जब प्रसन्नचित्त, भक्ति-भावों के उद्रेक से परिपूरित भक्तगण अपने इष्टदेवों का पूजन-अर्चन, द्रव्य तथा भाव से दृढ़ श्रद्धा-विश्वास से करते हैं तो तुम्हारे हृदय में ईर्ष्या-द्वेष की आग क्यों जलने लगती है । अज्ञान की खाई में स्वयं गिरते हुए दूसरों को भी उसमें गिराने का प्रयास क्यों करते हो ? तुम्हारा इस प्रकार का आचरण, किसी की धार्मिक सद्भावना को ठेस पहुँचाना, आगम, निगम तथा शास्त्रसम्मत तो कभी हो ही नहीं सकता । साथ ही लोक-व्यवहार सम्मत भी नहीं है । क्योंकि मनुष्य का आगम के अनुसार अपनी उपासना पद्धति को अपनाना निजी अधिकार है ।। ३५ ।।

□ **मूलश्लोकः—**

इयं मूर्त्तेः पूजा वितरति शिवं कीर्त्तिममलां,
नराणां सद्वाञ्छामिह परभवां पूरयति द्राक् ।
सुरानर्चन् लोको व्रजति परमां पूज्य पदवीं,
ततो धार्यं कार्यं सुरनरपते - रर्चनमलम् ॥ ३६ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः—**एषा मूर्त्तिपूजा मनुष्याणां निर्मलां कीर्त्ति विस्तारयति, कल्याणमार्गं च वितनोति । मनुष्याणां वर्त्तमानां परोक्षां वा सद्भावनां सदीप्सितं च सपदि पूरयति । देवपूजनं लोकमपि पूजास्पदं विदधति । अस्मात् कारणात् वीतराग-श्रीजिनेश्वरदेवानां पूजा, अर्चना सदैव मनसा भावनीया विमलेन चेतसा सन्निष्ठया भक्त्या श्रद्धया मनोयोगेन शास्त्रोक्तविधिना अवश्यमेव करणीया ॥ ३६ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद—**यह मूर्त्तिपूजा, मनुष्यों की निर्मल कीर्त्ति तथा कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करती है। मनुष्यों के इस जन्म तथा परभव की अनेकानेक मंगलमयी भावनाओं की पूर्त्ति अतिशीघ्र करती है । देवपूजा मनुष्यों को भी पूजनीय एवं आदरणीय बना देती है । अतएव वीतराग श्रीजिनेश्वर देवों की पूजा, अर्चना अहर्निश मन में धारण करनी चाहिए तथा श्रद्धा, भक्ति, पूर्णमनोयोग एवं शास्त्रोक्तविधि से अवश्य ही करनी चाहिए ॥ ३६ ॥

□ **मूलश्लोकः–**

यथा भव्यं चित्रं सुभगपरिणामाय भविनाम् ,
भयाकारं भीतिं सृजति बहुधा वेपथुमपि ।
स्त्रियामारागारं स्मितमुखकुचैरङ्कितमिदम् ,
विकारं विभ्रान्ति चपयति कं नो युवजनम् ।। ३७ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–विदितचरमेतद् यत् शान्तं जडमयमपि चित्रं जनानामुत्तमपरिणामाय कल्पते । नारकिकवेदनाभिव्यञ्जकं भयानकं वा चित्रं भयाय प्रकम्पाय च कल्पते । स्त्रीणां वर्णनं मोहनृपतिचक्रीव शास्त्रेषु सन्दृब्धम् । तासां विवृताङ्गोपाङ्गानि चित्रेऽपि विलोक्य न केवलकामुकानां युवकानामपि तु तपसि लीनानामपि चित्तानि विकारपथमाप्नुवन्ति । एतेन स्फुटतामायाति विषयोऽयं यत् चित्राणामपि प्रबलः प्रभावोऽमोघ एव । सर्वैरपि लोकव्यवहारेण अनुभूयते च ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–सर्वविदित है कि शान्त जड़चित्र भी मनुष्यों के उत्तमपरिणाम का कारण बनता है । नरक की वेदना को अभिव्यक्त करने वाला तथा कोई भयानक चित्र भयोत्पादक कँपकँपी पैदा करने वाला होता है । स्त्रीवर्णन, शास्त्रों में मोहसम्राट् के रूप में

संप्राप्त होता है। उनके खुले अङ्गों तथा उपांगों को चित्र में भी देखकर कामुकों की हो नहीं, अपितु तपस्या में लीन तपस्वियों के मानस में भी विकृति उत्पन्न हो जाती है तथा हुई भी है। इस प्रकार यह विषय स्पष्ट होता है कि जड़ चित्र भी प्रबल प्रभाव डालने में सक्षम होता है। व्यावहारिक विश्व-जगत् में सभी इसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।। ३७ ।।

[३८]

☐ **मूलश्लोकः—**

विकारैर्मुक्तानां विजितकरणानां शिवजुषां,
जिनेन्द्राणां बिम्बं त्रिभुवनगुरूणां स्मितमुखम्।
स्मरन् ध्यायन् पश्यन् ध्रुवमिहवरो भव्यपुरुषः,
परां शान्तिं किं नो श्रयति मनसो मोहशमनीम्।। ३८ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः—**क्रोध-मान-माया-लोभादिविकारैर्मुक्तानां मोक्षपदं प्राप्तानां सर्वसुरासुरनरेन्द्रादिवन्दनीयानां वीतराग-श्रीजिनेश्वराणां प्रसन्नमुखमुद्रायुतं प्रतिबिम्बं-जिनमूर्त्ति दृष्ट्वा, स्मृत्वा किं भक्तगणः आनन्दसागरनिमग्न इव मोहनीयकर्मविनाशिनीं परां शान्तिं न प्राप्नोति ? चिरश्च प्रचुरत्वेन प्राप्नोत्येव।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–क्रोध, मान, माया, लोभ, मद, मात्सर्य इत्यादि विविध सांसारिक संतापों की समृद्धि करने में सक्षम दोषों का सर्वथा परित्याग करने वाले वीतरागी और सर्वसुरासुरनरेन्द्रादि द्वारा सदा वन्दनीय ऐसे श्रीजिनेश्वर भगवान की प्रसन्न मुखमुद्रावाली भव्य मूर्त्ति-प्रतिमा का दर्शन, स्मरण तथा ध्यान करके भक्तजन आनन्द के सागर में निमग्न की भाँति मोहनीयकर्म का विनाश करने वाली अखण्ड शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकते? अवश्यमेव प्राप्त कर सकते हैं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह की कोई स्थिति अनुभूत नहीं होती है ॥ ३८ ॥

[३९]

☐ **मूलश्लोकः–**

पुरातत्त्वं चेदं महति नगरे सञ्चितमदः,
ऋते लाभात् किञ्चित् किमिह चिनुते कोऽपि शकलम् ।
कला कासीत् पूर्वं क इह नरनाथोऽर्चनविधिः,
पुरातत्त्वं चेदं प्रथयति सुसम्बोधयति तत् ॥ ३९ ॥

संस्कृतभावार्थः–प्रत्येकेषु महानगरेषु नगरेषु च पुरातत्त्वविभागेन प्राचीनानां वस्तूनां विविधप्रतिमा-(मूर्त्ति) शस्त्र-अस्त्र-शास्त्रादीनां संचयो राजकीयनियमानु-

सारेण कृतमास्ते। प्रयोजनमनुद्दिश्य तु मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते। पुरातत्त्वविभागोऽयं पूर्वकालिकानां कलाकृतीनां रचनादीनां तथा च कस्मिन् राजनि शास्ति ? कस्य मन्दिरस्य निर्माणम् ? कीदृशी पूजापद्धतिः ? कीदृशी वास्तुकला ? कीदृशी स्थापत्यकला-मूर्त्तिकला आसीत् ? इति विषये प्राचीनात् प्राचीनतरं सूक्ष्मं गहनं विविच्य प्रस्तौति, वितनोति च प्राचीनकलाकौमुदीमिति।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–प्रत्येक महानगर एवं नगर में पुरातत्त्व विभाग के द्वारा प्राचीन वस्तुओं प्रतिमा-मूर्त्ति, अस्त्र, शस्त्र, शास्त्र इत्यादि का संचय-संग्रह किया गया है। उद्देश्य के बिना तो सामान्यजन की प्रवृत्ति भी किसी विशेष कार्य में नहीं होती है। अतः पुरातत्त्वविभाग का कार्य भी सोद्देश्य है। यह पुरातत्त्व विभाग-प्राचीन समय में किस राजा-महाराजा के शासनकाल में किस प्रकार की कलाकृतियाँ तथा रचनायें थीं। वास्तुकला, स्थापत्यकला, मूर्त्तिकला इत्यादि कैसी थी, इस विषय में प्राचीन से प्राचीन सूक्ष्म तथा गहन विवेचन करके प्रस्तुति प्रदान करता है तथा प्राचीन कलाओं की यशोगाथा को प्रामाणिक विस्तार देता है ।। ३९ ।।

□ **मूलश्लोकः–**

यथा साधोर्दानं जगति वपुषो रक्षणफलं,
ततो ज्ञानं ध्यानं श्रयति तनुते धर्ममनघम् ।
स्वयं पुण्यं कुर्वन् विपुलमनुजैः कारयति सः,
ततो भक्तं पानं शिवसुखमनन्ताय शमिने ।। ४० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः–**सुपात्राय संयमधारिणे श्रद्धाबहुमानपूर्वकं प्रदत्तमन्नपानादिकं पूर्वं तावत् क्षुधानिवृत्तिजनकत्वात् शरीररक्षणाय कल्पते। किन्तु वृक्षमूलसिञ्चनेन यथा फल-कुसुम-छायेन्धनादीनां बहुतरा लाभा भवन्ति तथैव सुपात्रदानेनापि सम्भवन्ति विविधलाभाः। यथा–संयमधारी स्वयं धर्मं धारयति, करोति च ज्ञानाभ्यासं ध्यानारोपणम्। स्वयं पारङ्गतः सन् अन्यान् अपि प्रेरयति, कारयति च धर्मध्यानादिकम्। भवन्ति च सुखिनो सन्तः स्वयमाचरन्तोऽन्यानपि योजयन्तो धर्ममार्गे। अतः सुपात्रदानं मुक्तेरपि संसाधकम्। नेयं अतिशयोक्तिः जैनागमाः शास्त्राणि च सुपात्रदानमहत्त्वकथानकैः समुल्लसिताः सन्ति।

❀ **हिन्दी अनुवाद–**सुपात्र संयमधारी मुनिराज को श्रद्धापूर्वक प्रदत्त अन्न-पानादिक दान प्रथम दृष्टया क्षुधा-

तृषादिक निवर्त्तक होने से मात्र देह-शरीर-रक्षा ही करता दिखाई देता है, किन्तु जैसे वृक्ष को सींचने से वृक्षवृद्धि के साथ-साथ फल, फूल, छाया, औषध तथा ईंधनादिक अनेक लाभ होते हैं ठीक उसी प्रकार सुपात्र को भी उस दान से अनेक लाभ होते हैं। सुपात्र संयमी स्वयं धर्म आराधना, ज्ञान-ध्यान साधना करता है तथा निष्णात होकर अन्य जन को भी प्रेरित करता है। इस प्रकार क्रमशः सुपात्रदान मोक्ष का साधक भी सिद्ध होता है। यह अतिशयोक्ति नहीं, अपितु जैनागमों तथा शास्त्रों के विविध प्रकार के कथानकों से प्रमाणित है ।। ४० ।।

[४१]

□ **मूलश्लोकः–**

जलेऽनन्ता जीवा जिनवरमरालैर्निगदिताः,
तथैवाग्निर्वायुस्तृणफलसमूहेऽपि च तथा।
कणानां यच्चूर्णं विमृशतु बुधो मीलितदृशा,
निहत्यैताञ्जीवान् परिणमति भोज्यं रसमयम् ।। ४१ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–केचिद् विरोधिन आक्षिपन्ति- जलबिन्दौ, अग्निकाये, वायुकाये तृणपुष्पादिषु वनस्पति-कायेषु अनन्ता जीवा भवन्ति–इति लोकालोकज्ञात्राभगवता श्रीजिनेश्वरदेवेन प्रतिपादितम्। पूजायामेतेषां पदार्थाना-

मुपयोक्ता पापभाक् कथं न भवति ? वस्तुतः सत्यमेतद् यद् षड्जीवनिकायविनाशमन्तरा भोज्यं न सम्पद्यते तदा महाजीवरक्षका भोजनं कथमुपभुञ्जन्ते ?

समाधानं तावत्–उपयोगलक्षणावश्यककार्यप्रवृत्तिः न कदापि पापाय कल्पते । प्रमादप्रवृत्तिस्तु पापाय ।

उक्तञ्च श्रीदशवैकालिकसूत्रे चतुर्थाध्ययने—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सये ।
जयं भुंजं वा भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ ।। ८ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–मूर्त्तिपूजा के विरोधीजन आक्षेप करते हैं कि अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय आदि में अनन्तानन्त जीव हैं, त्रिकालवर्त्ति लोकालोक के स्वरूप को जानने वाले श्रीजिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्त ने ऐसा प्रतिपादित किया है । फिर अर्चन-पूजन में काम आने पर भी उपयोक्ता को पापकर्म का बन्धन क्यों नहीं होता ? वस्तुतः यह सत्य है कि पृथ्वीकायादि षड्प्रकार के जीव-निकाय के विनाश के बिना भोज्यनिर्वृति नहीं होती तब महाजीवरक्षक भोजनादि क्यों ग्रहण करते हैं ? उसका समाधान यह है कि–आवश्यक कार्यों की प्रवृत्ति के लिए उपयोग-विवेक की आवश्यकता होती है । **'प्रमादाचरणं**

हिंसा' प्रमाद-प्रवृत्ति पाप के प्रति कारण है। **श्रीदशवैकालिक सूत्र** नामक आगम में स्पष्ट है कि सम्पूर्ण विवेक के साथ किये गये आहार तथा विहार आदि आचरण में किसी भी पापकर्म का बन्ध नहीं होता है, अतः प्रभुपूजा निर्दोष है ।। ४१ ।।

[४२]

☐ **मूलश्लोकः—**

कियन्मात्रं तोयं व्ययति जिनबिम्बार्चन-विधौ,
तथैवान्यद् द्रव्यं मलयजयुतं धूपदहनम् ।
प्रमादोऽयं हिंसा विगतपरिणामो निगदितः,
वदन् गच्छन् तिष्ठन्नपि सदुपयोगो न तु हतिः ।। ४२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः—**प्रभोर्द्रव्यमयी पूजायां कियन्मात्रम् ?—ईषन्मात्रमेव जल-चन्दन - पुष्प-धूप-दीप-अक्षत-नैवेद्य-फलादीनां द्रव्याणामुपयोगो भवति । तत्र विचार-प्रचारो वृथा । गृहकार्येषु असावधानतया विपुलजलादि-द्रव्याणां भवति प्रवहणं न तत्र विचारः कुरुते । पूजा-विरोधी पूजायां कियज्जलादिप्रयोग इति निन्दकरीत्या विवेचयति । वस्तुतस्तु हिंसायाः का परिभाषेति विज्ञाय-ताम् । 'प्रमादाचरणं हिंसा' उपयोगशून्या प्रवृत्तिः, विवेक-रहिता प्रवृत्तिरेव हिंसाया जनिकेति मन्यताम् । आयुष्यकर्म

यावत् जिनेश्वरा अपि लोकोपकाराय विहारप्रतिबोधनादिकमुपयोगपूर्वकं कुर्वन्ति, तत्र न भवति हिंसा। सदुपयोगस्तावद् धर्मजनको न तु पापाय ॥ ४२ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—श्री वीतरागविभु की द्रव्यमयी पूजा में अल्पमात्र में उपयोगपूर्वक शुद्ध जल, चन्दन, पुष्प, धूप, दीपक, अक्षत, नैवेद्य तथा फल इत्यादिक का उपयोग होता है। सांसारिक गृहकार्यों में तो अविवेक असावधानीपूर्वक विपुलमात्रा में तत्-तत् द्रव्यों का अपव्यय होता है। उस पर पूजाविरोधी ध्यान नहीं देते अपितु मूर्त्तिपूजा की निन्दा करने में कटिबद्ध दिखाई पड़ते हैं वह समुचित नहीं है। वस्तुतः प्रमादसहित आचरण हिंसा है। आयुष्यकर्म के शेष रहने पर वीतराग श्रीजिनेश्वरदेव भी विवेकपूर्वक विहार-नीहार प्रबोधन आदि लोकोपकार के लिए करते हैं। अतः उपयोगशून्य विवेकरहित प्रवृत्ति ही हिंसा की जननी है, सदुपयोग-विवेकपूर्वक प्रयोग धर्मजनक है ॥ ४२ ॥

[४३]

□ **मूलश्लोकः—**

सपर्य्येयं भर्त्तुः परिणति-विशेषा सुमनसः,
विशुद्धायां तस्यां लुठति करमध्ये शिवसुखम्।
विशुद्धा पूजेयं प्रथमशिवपङ्क्तिर्निगदिता,
विधिज्ञा अभ्यासं किमु न विदधीरन् शिवकृते ॥ ४३ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—त्रिलोकीनाथ-परमेश्वर-श्रीजिनेन्द्र-देवस्य द्रव्यपूजा, भावपूजा च विशुद्धमनसः परिणामविशेषे स्तः। मनसो विशुद्धे परिणामे प्रतिष्ठिते सति मोक्षफल हस्तामलकवत् सम्प्राप्नोति करतलम्। तत्र दीक्षा भिक्षा नापेक्ष्यते। जिनमूर्त्तिपूजा सुदूरमोक्षप्रसादारोहणार्थं कल्याणकारिणी प्रथमापदं पङ्क्तिरस्तीति ज्ञानिभिः कथितम्। यूयमपि विबोधिनो मिथ्यात्वं परित्यज्य पूजयन्तु श्रीजिनेश्वरदेवं द्रव्येण भावेन वा। अनेन मार्गेणानेकैर्भव्यपुरुषैः मोक्षोऽवाप्तः। अतो 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इति सूक्तिमनुसरन्तु।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—त्रिलोकीनाथ परमेश्वर श्रीजिनेश्वर-देव की द्रव्यपूजा तथा भावपूजा विशुद्ध मन की विशेष परिणति हैं। मानस के विशुद्ध परिणाम के प्रतिष्ठित होने पर मोक्षफल हस्तगत हो जाता है। ऐसा होने पर दीक्षित होने, मुनिवेष धारण आदि की भी कोई अपेक्षा नहीं रहती है। जिनमूर्त्तिपूजा सुदूर मुक्ति-मोक्षमहल पर आरूढ़ होने के लिए प्रथम सोपान का काम करती है।

इसलिए तुम सब (मूर्तिपूजा विरोधी भी) मिथ्यात्व का परित्याग करके वीतराग श्रीजिनेश्वर भगवान की द्रव्यपूजा और भावपूजा में तल्लीन हो जाओ। इस मूर्त्ति-

पूजा के मार्ग से अनेक भव्य पुरुष मोक्षगामी हुए हैं। अतः 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इस सूक्ति के अनुसार मूर्त्ति-पूजा का अनुसरण करो। यह सहज और सरल मार्ग है ॥ ४३ ॥

[४४]

□ **मूलश्लोकः—**

चतुर्भिर्निक्षेपैर्जगति जगदानन्द जनकैः,
वरैर्ध्यानैर्ज्ञानैर्विगतमदमोहैर्विरचिताः ।
स्तवैर्भव्यैर्भावैर्मधुमयरसैर्द्रव्यनिकरैः ,
जिनेन्द्राणां पूजा जनयति न केषां शिवसुखम् ॥ ४४ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—परमतत्त्वमर्मज्ञैर्वीतरागैश्च ज्ञानेन ध्यानेन परमविज्ञानेन नाम-स्थापना-द्रव्य-भावैः प्रकटिता प्रकर्षमयोश्रीजिनमूर्त्तिपूजा चित्ताकर्षकैः सरलशब्दस्तवकै र्भावैर्प्रसूनैश्च सततं पूजनीया। एषा मूर्त्तिपूजा केषां कल्याणं न विदधाति ? सर्वेषामपि पूजकानामाराधकानां भद्रं शिवं कल्याणं करोतीति निश्चितम् ॥ ४४ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—परम तत्त्व को जानने वाले वीतरागदेव तथा महामनीषियों ने अपने अलौकिक ज्ञान-ध्यानात्मक शोध के द्वारा नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भावात्मक चार निक्षेपों से समुल्लसित मूर्त्तिपूजा करने का

विधान प्रस्तुत किया है। श्रीजिनमूर्त्तिपूजा चित्ताकर्षक सरल सरस शब्द सुमन-गुच्छों से तथा भावसुमनों से तन्मय होकर अवश्य करनी चाहिए। यह जिनपूजा संसार में सभी के लिए कल्याणकारिणी है ।। ४४ ।।

[४५]

☐ **मूलश्लोकः—**

अनाथानां नाथोऽप्यमरपतिपूज्यो जिनवरः,
तपस्तप्त्वा क्षिप्त्वा भवभयकरं कर्मनिचयम्।
जगद् दीपाकारं विदितभुवनं केवलमलं,
समेत्यागात् क्वासौ विनयनयपूर्णां निजपुरीम् ।। ४५ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः—**श्रीजिनेश्वरदेवोऽनाथानां दीनानामपि नाथः स्वामी वर्त्तते। स जिनेश्वरः सर्वसुरासुरेन्द्रैः पूजनीयः। जिनेश्वरोऽपि पूर्वं तावत् जन्मादिग्रहणं करोति। अनादिकालतः सञ्चितं कर्मसमूहैः घोरं तपस्तप्त्वा भावपूजादिकं विधाय दूरयति। लोकालोकप्रकाशकं केवलज्ञानं समधिगम्याघातिकर्माणि समूलमुन्मूलयति तथा च अपुनरावृत्तिनियमपरिपूर्णां शिवपुरीं प्राप्नोति। शिवपुरीमवाप्तये ध्यानरूपेण सोऽपि भावपूजनं विदधाति। अतः पूजा अनादि उपादेया चेति मन्यताम् ।। ४५ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—श्री जिनेश्वरदेव अनाथों के और दीनों के भी नाथ हैं। वे सर्वसुरासुरेन्द्रों के द्वारा पूजनीय हैं। किन्तु वे भी पहले जन्मादि प्रक्रिया से गुजरते हुए अनादिकालिक संचित कर्म को घोर तपस्या तथा भाव-पूजनादि के द्वारा दूर करके लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान को प्राप्त करके अघाति कर्मों का भी समूल उन्मूलन करके अपुनरावृत्ति नियमवाली मोक्षपुरी को प्राप्त करते हैं। शिवपुरी की प्राप्ति में ज्ञान-ध्यान की प्रक्रिया भी भावपूजा का अंग है। अतः पूजा अनादि तथा सतत उपादेय है ॥ ४५ ॥

[४६]

□ **मूलश्लोकः—**

तदानीं तत्पुत्रो भरत इति चक्री क्षितिपतिः,
भुवं जित्वा सर्वां स्वभुजबलवीर्येण सुभटैः।
विनीतोऽसौ भूमिं ध्वज-रथ-गजाद्यैः परिवृतां,
गुरुं प्राप्तं श्रुत्वा बलगजयुतोऽगात् प्रणतये ॥ ४६ ॥

संस्कृतभावार्थः—आसीद् श्रीआदिनाथ - ऋषभदेवस्य प्रथमपुत्रो भरतः चक्रवर्ती। स सुभटसेनया निजभुजबलेन च षड्खण्डेषु विजयमवाप्य गजाश्वपदातिभिः ध्वजापताकादिभिः सुसज्जितां विनीतापुरीं प्रपेदे। तदैव श्री-

आदिनाथ-ऋषभदेवप्रभोः पादार्पणं तत्र अन्यस्मात् स्थानात् सञ्जातमिति संश्रुत्य महर्द्धि-समन्वितोऽसौ वन्दनार्थं जगाम ।। ४६ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–श्रीआदिनाथ-ऋषभदेव के प्रथम पुत्र भरत चक्रवर्ती थे। उन्होंने अपने विशाल भुजाबल तथा सुभटसेनाबल से षट्खण्ड पृथ्वी पर अपना अधिकार जमा लिया था। एक बार जब वे विजयश्री प्राप्त करके गज, अश्व तथा पदाति सेना के साथ ध्वज लहराती सुसज्जित विनीतापुरी में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने सुना कि परमाराध्य परमपूज्य श्री आदीश्वर प्रभु का पदार्पण हुआ है, तो वे अविलम्ब, नितान्त विनीत भाव से सेना के साथ ही प्रभु का वन्दन करने के लिए श्रीऋषभदेव भगवान के समीप गये ।। ४६ ।।

[४७]

☐ **मूलश्लोकः**–

नमन् मौलिं नत्वा त्रिभुवनगुरुं दुर्लभपदं,
निसिञ्चन् तत् पादौ नयनसलिलैः प्रातिजनितैः ।
तदा प्रोचे प्रीत्या मधुरवचनं योजितकरः,
भवद्भिर्नो ग्राह्यं वसनमशनं सादृशजनात् ।। ४७ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–परमविनीतैव चक्री नम्रेण निज-

मस्तकेन देवदुर्लभं त्रिलोकनाथादीश्वरप्रभोः चरणकमल-युगलं नत्वा, प्रभोरागमनेन सञ्जातानन्दाश्रुजलेन भगवत-श्चरणयुगलं प्रक्षालितवान् । तदनन्तरं बद्धाञ्जलिः प्रोवाच-"हे भगवन्तः ! भवन्तस्तु न किमपि आहारादिकं वस्त्रा-दिकं वा गृह्णन्ति मादृशो जनात् । एवं सति कथमस्माकं कल्याणं स्यादिति भावः" ।। ४७ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–परम विनीत सम्राट् **श्रीभरत-चक्रवर्त्ती** ने निजमस्तक झुकाकर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास से गुरुओं के गुरु त्रिलोकनाथ श्री आदीश्वर प्रभु के चरण-कमलों में सादर वन्दनाञ्जलि अर्पित करके, प्रभु के शुभा-गमन से प्रादुर्भूत आनन्द की अश्रुधारा से उनके चरणकमल प्रक्षालित किये तथा अत्यन्त विनम्र भाव से कहा कि–हे प्रभो ! आप तो हमारे जैसे पुरुषों के घर का कुछ भी ग्रहण नहीं करते तो भला हमारा उद्धार कैसे संभाव्य है ? ।। ४७ ।।

[४८]

□ **मूलश्लोकः–**

वयं वै जानीमो निगमवचनात् साधुकथनात् ,
कथं मादृग्लोको भवजलनिधेर्यास्यति शिवम् ।
विदन् सर्वं स्वस्मिन् त्रिभुवनविदा केवलदृशा ,
विनायासं कञ्चिद् वदवरमुपायं भवगुरो ।। ४८ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे भगवन् ! वयमपि सतां मुखारविन्दैः जैनागमाभ्यासेन च जानीमो यद् राज्ञोऽशनादिकसाधुयोग्यं नैव भवति । भवान् एव वदतु यत् मादृशो जनाः संसारसागरात् कथं तरेयुः ? पञ्चमकेवलज्ञानत्वात् त्रिकालज्ञानी-त्रिलोकदर्शी-सर्वज्ञप्रभुरपि वदन्तीति सत्यम् न कल्पते साधवे तत् । चक्रवर्ती अकथयत्—हे जगत्गुरो ! प्रयासमन्तरा अर्थात् कष्टरहितमुपायं कथयतु भवसिन्धुं पारं कर्त्तुम् ।। ४८ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे भगवन् ! हम जैसे अज्ञानी व्यक्ति भी साधु-महात्माओं की-सन्तमहापुरुषों की प्रवचन-वाणी तथा जैनागम के अभ्यास से यह जानते हैं कि राजा का अन्न, वस्त्र आदि साधु-मुनि को ग्राह्य कल्प्य नहीं है । ऐसा होने पर हम आपकी सेवा से रहित रहकर इस संसार-सागर को कैसे पार कर सकेंगे ? केवलज्ञानी सर्वज्ञ-विभु ने कहा कि तुम्हारा कथन यथार्थ है । पुनः सम्राट् ने निवेदन किया कि हे विश्वगुरो ! संसार-सागर से पार पहुँचने का कोई बिना प्रयास अर्थात् कष्ट रहित उपाय बताइये ।। ४८ ।।

□ **मूलश्लोकः–**

निशम्यैवं वाचं करुणहृदयोऽप्यादि पुरुषः ,
सुधा सारा वाचा शमितविपदा तं कथितवान् ।
श्रुतौ दानं सर्वं शृणु सुकृतिसारं निगदितं ,
पुरा यैर्नो दत्तं भ्रमति हृतभाग्यं प्रतिपदम् ॥ ४६ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–श्रीभरतचक्रवर्त्तिनो दयार्द्रवचनमिदं श्रुत्वा श्रीग्रादीश्वरदेवेन सुधासारवर्षिण्या विपत्तिहारिण्या वाण्या भरतो निगदितः । हे भरत ! शृणु ग्रागमशास्त्रेषु सर्वधर्मरहस्यं दानमनेकधा स्फुटीकृतम् । यैः पूर्वं दानं न कृतं ते भाग्यहीना भवन्ति, संसारे च प्रतिपदं त एव दुःखिनो भूत्वा भवन्ति ॥ ४६ ॥

❀ **हिन्दी ग्रनुवाद**–श्री भरत चक्रवर्त्ती के दीनवचनों को सुनकर श्री ग्रादीश्वर-ऋषभदेव भगवान् ने सुधावर्षी विपत्तिहारिणी वाणी से भरत चक्री को कहा कि—हे भरत ! सुनो ! ग्रागमशास्त्रों में समस्त धर्मों का सार दयाधर्म को कहा गया है । जिन्होंने पहले दान नहीं दिया, वे इस भव में भाग्यहीन हैं तथा संसार में दुःखित पीड़ित होकर जीवन-यापन कर रहे हैं ॥ ४६ ॥

☐ **मूलश्लोकः–**

परं तेषां मध्ये वरतरमिदं त्वन्नयजनं,
क्षुधार्त्तो लोकोऽयं किमु न कुरुतेऽकृत्यमतुलम्।
सदन्ने सम्प्राप्ते द्रुतमहह सा शाम्यति क्षुधा,
तदा स्वीयं कार्यं किमु न तनुते चेन्द्रियगणः ।। ५० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–श्रीआगमवर्णितेषु सकलेष्वपि दानधर्मेषु अभयदानवत् अन्नदानस्यापि महिमा श्रेष्ठतमा वर्त्तते। क्षुधार्तो मनुष्यो किं किं कुकृत्यं न तनोति? क्षुधापीडितः सन् मनुष्यः कार्यमकार्यं वा किमपि विचारयितुं न प्रभुः। एतस्मिन् क्षुधार्त्ते समये कुत्सितमन्नमपि प्राप्येत् तदापि क्षुन्निवृत्तिर्भवति। सदन्नप्राप्तेस्तु का कथा? तदा तु सर्वाणि च इन्द्रियाणि कुकृत्यजालं परित्यज्य यथोचितेषु कार्येषु प्रवर्तन्ते ।। ५० ।।

❁ **हिन्दी अनुवाद**–श्रीआगमों तथा समस्त शास्त्रों में जो दान-महिमा वर्णित है, उन दानधर्मों में भी श्रेष्ठतम **'अभयदान'** की माफिक **'अन्नदान'** को श्रेष्ठ माना गया है। सर्वविदित है कि नितान्त क्षुधा-भूख पीड़ित मनुष्य विवेक को खो देता है, उसे कार्य-अकार्य, कर्म-विकर्म का ध्यान नहीं रहता। वह पापी पेट के लिए कैसा भी कार्य

करने में प्रवृत्त हो जाता है। ऐसे असमय में, यदि उसे सहजता से कदन्न ज्वार, बाजरा, कोदों (कोद्रव) आदि भी भोज्य रूप में उपलब्ध हों तो क्षुधा-भूख निवृत्ति हो जाती है। सदन्न गेहूँ, चावल आदि की तो बात ही और है, उसकी प्राप्ति से क्षुधार्त व्यक्ति कुकर्म छोड़कर सत् कर्म में प्रवृत्त हो जाता है, सभी इन्द्रियाँ अपने यथोचित कार्य में लग जाती हैं ।। ५० ।।

[५१]

□ **मूलश्लोकः–**

यथा शुष्यन् वृक्षो जलभरमसौ प्राप्य जलदात् ,
फलेभ्यः पुष्पेभ्यः स्पृहयति सुदत्ते बहुतरम् ।
तथैवान्ने प्राप्ते त्वियमपि तनुः प्राप्य स्वमसून् ,
सदा सूते धर्मं शिवसुखमनन्तं च लभते ।। ५१ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यथा ग्रीष्मर्तौ तपनतापेन शुष्यन् वृक्षः वर्षाकाले मेघैर्जलमवाप्य हरितो भवति, चिरकालं यावत् सरसफलकुसुमसमृद्धिञ्च वितनोति । तथैव बुभुक्षितं शरीरमपि सदन्नं लब्ध्वा पुनः संजीवनीं शक्तिमाप्नोति, चिरं यावत् धार्मिककार्यं कुर्वन् अन्ते जीवोऽनन्तं सुखमयं मोक्षमपि लभते ।। ५१ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रखर किरणों से सूखता हुआ वृक्ष वर्षा ऋतु के समय बादलों से वर्षित जल को प्राप्त करके पुनः हरा-भरा हो जाता है और चिरकाल तक सरस फल-फूल प्रदान करता रहता है, ठीक उसी प्रकार भूखा व्यक्ति भी सदन्न प्राप्त करके जीवन-शक्ति को पुनः प्राप्त करके सत् कार्यों में प्रवृत्त होता है। पश्चात् निरन्तर धर्म करते हुए अनन्त, अक्षय, अतुलनीय परमपद मोक्ष को भी प्राप्त करता है ।। ५१ ।।

[५२]

☐ **मूलश्लोकः**–

ततो भक्त्या शक्त्या द्रुतमिति विधेयं शिवकरं,
प्रिये चानेनाहं क्षुधितमनुजोऽप्यार्ति शमनात् ।
शुश्रूषा पितृणां वचनकरणात् स्याद् वरतरा,
अयं मुख्यो धर्मः क्षुधितजनताराधनमयः ।। ५२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–भगवता श्रीआदीश्वरेण प्रोक्तं यत् यथाशक्ति यथाभक्ति क्षुधार्तेभ्योऽन्नदानं शीघ्रमेव प्रदातव्यम् एतेन क्षुधार्त्तानां क्षुधानिवृत्तिस्तु भवत्येव । अहमपि प्रसीदामि, यदनेन ममाज्ञानिर्वाहः कृत इति । पितृणां गुरूणां सेवादिकं क्षुधार्तेभ्यो अन्नदानान् न्यूनतरम् । सदन्न-दानधर्मे सर्वस्माद् विशिष्यते ।। ५२ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–भगवान् श्रीआदीश्वर ने कहा है कि पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखकर के यथाशक्ति यथा-भक्ति भूखों को 'अन्नदान' देना चाहिए। ऐसा करने से भूखों की क्षुधा-शान्ति तथा सन्मार्ग-प्रवृत्ति तो होती ही है, साथ ही मुझे भी प्रसन्नता होती है कि मेरी आज्ञा का पालन हुआ। माता-पिता तथा गुरुजनों की सेवा से भी दीन, हीन, क्षुधार्तों को अन्नदान देना श्रेयस्कर है। **अन्न-दान** सभी दानधर्मों में प्रमुख है ॥ ५२ ॥

[५३]

☐ **मूलश्लोकः**–

ततो भव्यं कार्य्यं जिनपतिगुरूणां सुसदनं,
विशालं सद्द्रव्यैः सुरपतिनिकायादपि वरम् ।
विधेया सर्वेषां जिनवरगुरूणां सुप्रतिमाः,
प्रतिष्ठाः सद्भक्त्या पुनरपि विधेया वरमहैः ॥ ५३ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–प्रथम - तीर्थङ्करेण भगवता श्रीआदीश्वरेण प्रोक्तम्–हे भरत ! क्षुधार्तेभ्योऽन्नदानान्तरं सर्वेषामपि जिनेश्वराणां यथाशक्ति उत्तमोत्तमं इन्द्रभवनमिव जिनमन्दिरं निर्मापितव्यम् । मन्दिर - निर्माणानन्तरं प्रतिमन्दिरे श्रीजिनेश्वर-प्रतिमा शास्त्रोक्तविधिविधानैः महोत्सवैः भक्तिभरितैः प्रतिष्ठा-स्थापितव्या । प्रमादं

परित्यज्य प्रतिदिनं भक्त्या विधिपूर्वकं पूजनं विधेयम् । समये-समये महती पूजामहोत्सव स्वविधेयः ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—प्रथम तीर्थंकर भगवान् श्रीआदीश्वर ने फरमाया कि—हे भरत ! क्षुधार्तों को अन्नदान करने के बाद भी सभी जिनेश्वरदेवों के मन्दिर यथाशक्ति इन्द्रभवन के समान दिव्यरूप में निर्मित करवाओ तथा प्रत्येक जिनेश्वरदेव की प्रतिमा, विधिविधान तथा श्रद्धा-भक्ति-उत्सव के साथ प्रतिष्ठित करके नित्य श्रद्धापूर्वक पूजन करो तथा समय-समय पर बड़ी पूजा तथा महोत्सव का भी भक्तिपूर्वक आयोजन करो ।। ५३ ।।

[५४]

□ **मूलश्लोकः—**

परं कार्यं हित्वा प्रतिदिनमनर्घ्या बहुलता ,
सपर्या सत्कार्या सत्समिह धेया जिनवराः ।
त्वया तार्यं चायं भवजलनिधिः पूर्वविधिना ,
इतो नान्यो लोके वरतरउपायो भवहरः ।। ५४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—देवाधिदेवेन भगवता श्रीआदिनाथ-जिनेश्वरेण निगदितम् हे भरत ! त्वं सकलकार्यं परित्यज्य निर्दोषजिनेश्वरं सभक्तिः, सश्रद्धः सन् शान्तचित्तेन प्रभुं

पूजय, जपं कुरु। यदि त्वं संसारसागरात् पारं गन्तुमिच्छसि तदा तु सर्वसुखप्रदायकं एतदनन्तरं कोऽप्युपायः साधीयान् सुकरश्च न वर्त्तते।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–देवाधिदेव भगवान् श्रीआदीश्वर ने कहा कि–हे भरत! तुम समस्त चित्तविकृति-विविध भ्रान्ति पैदा करने वाले कार्यों को छोड़कर के पूरी तत्परता, निष्ठा, मनोयोग एवं श्रद्धा के साथ श्रीजिनेश्वर-पूजन में मन लगाओ और नाम जप-जाप करो। यदि तुम इस असार संसार-सागर से मुक्त होना चाहते हो तो सर्व सुख-प्रदायक अक्षय आनन्दकारक प्रभु-पूजा करो। इससे श्रेयस्कर तथा सुलभ अन्य कोई भी मुक्ति-मोक्ष का उपाय नहीं है॥ ५४॥

[५५]

□ **मूलश्लोकः**–

जिनादेशं चक्री क्षितितलसमेतेन शिरसा,
वहन् पादौ नत्वा सुरपतिनरेन्द्रैश्च महितौ।
प्रपेदे स्वावासं सुरपतिनिवासैरुपमितं,
ततोऽसौ प्रारेभे जिनवरगुरूणां सुसदनम्॥ ५५॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–सर्वज्ञविभोः श्रीआदिनाथजिनेन्द्रस्य निदेशं लब्ध्वा चक्रवर्ती भरतः सर्वसुरासुरेन्द्रादिपूजितं

प्रभुचरणकमलं भूतलनमितशिरसा ववन्दे । ततश्चेन्द्र-विमानमिव शोभासम्पन्नं जिनमन्दिरं निर्माप्य प्रभुप्रदर्शितेन यथा धर्मारम्भं प्रारेभे ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–सर्वज्ञविभु श्रीआदिनाथजिनेन्द्र के आदेश को प्राप्त करके चक्रवर्त्ती भरत ने सर्वसुरासुरेन्द्रादि देवों से पूजित प्रभु के चरण-कमलों में श्रद्धापूर्वक झुक कर वन्दन किया । तदनन्तर प्रभु के बताये हुए सद्धर्म के अनुसार आचरण करते हुए देवराज इन्द्र के विमान के समान शोभासम्पन्न जिनमन्दिर का निर्माण करवाया तथा धर्माराधन प्रारम्भ कर दिया ।। ५५ ।।

[५६]

☐ **मूलश्लोकः**–

महार्हैः सद्द्रव्यैर्धवलितदिगन्तै - र्मणिगणैः ,
व्यधादादीश्वरशस्य सुरगिरिनिभं मन्दिरमहो ।
ततो भव्यां मूर्त्ति विगतगगनाभोगविमलां ,
स्पृशन्तीं स्वर्लोकं प्रवरमणिरत्नैरगणितैः ।। ५६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–प्रथमं तावत् श्रीभरतचक्रवर्त्तिना प्रथमतीर्थङ्करस्य श्रीऋषभदेवस्य भगवतः निजकिरण-जालैर्धवलीकृत - दिग्दिगन्तैर्बहुमूल्यरत्ननिकरै - र्गगनचुम्बि-

सुमेरुपर्वतादपि श्रेष्ठतरं मन्दिरं अकारि। जिनमन्दिर-निर्माणानन्तरं सद्रत्नप्रभया सूर्यमतिशायिनी प्रभोः श्रीऋषभदेवस्य भगवतः प्रतिमा निर्मापिता।

❀**हिन्दी अनुवाद**—सर्वप्रथम श्रीभरतचक्रवर्त्ती ने प्रथमतीर्थंकर **श्री ऋषभदेव भगवान्** का ऐसा दिव्य मन्दिर बनवाया, जिसमें जटित रत्न अपने किरणजाल से समस्त दिशाओं को श्वेताभ बना रहे थे, तथा उसको विशालता गगनचुम्बी सुमेरुपर्वत से भी श्रेष्ठतर थी। जिनमन्दिर के बाद प्रभु श्रीऋषभदेव भगवान की सूर्यातिशायिनी प्रतिमा-मूर्त्ति का निर्माण करवाया ॥ ५६ ॥

[५७]

□ **मूलश्लोकः—**

भवद् याता यास्याज्जिनवरगुरूणां च भवनं,
विमानाभं चक्रे भवभयहरीस्ताश्च प्रतिमाः।
शुभे लग्ने काले ग्रहगणसमेते जिनगृहे,
प्रतिष्ठाः सद्द्रव्यैः प्रवरविधिना वै च विदधे ॥ ५७ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—अतीत-वर्त्तमान-अनागत-कालीन-श्रीजिनेश्वरदेवानां जन्म-जरामरणभयविनाशिनीनां प्रतिमानामुच्चैः स्थितेषु ग्रहनक्षत्रगणे शुभलग्नमुहूर्त्तादिषु

महामहोत्सवपूर्वकं विधिविधान - समन्विता प्रतिष्ठा सम्पादिता ॥ ५७ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–अतीत, वर्त्तमान और भविष्य-कालीन श्रीजिनेश्वरदेवों की (चौबीसी की) जन्म, जरा और मृत्यु आदि की असह्य वेदनाओं को शान्त करके परमसुख, परमशान्ति, अक्षय आनन्द को प्रदान करने वाली प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा शुभग्रह-नक्षत्र आदि की शास्त्रीय विशुद्ध गणना के अनुसार उच्चस्थिति तथा शुभ लग्न-मुहूर्त्तादि में महामहोत्सवपूजन सहित विविध विधि-विधानपूर्वक सम्पादित की ॥ ५७ ॥

[५८]

☐ **मूलश्लोकः**–

विमुच्यान्यत् सर्वं जिनवर - पदाम्भोजरसिकः ,
त्रिकालं सद्भक्त्या स्तवनप्रमुखैश्चन्दनवरैः ।
जलै - र्दीपै - र्धूपैः शुभकुसुम-नैवेद्य-फलकैः ,
जिनेन्द्राणां चक्रेऽक्षतप्रवरैः पूजनमहो ! ॥ ५८ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–श्रीजिनेश्वर - विभोः चरण-कमलानुरागी चक्री भरतोऽन्यत् सर्वं राजकीयकार्यं सचिवेषु निक्षिप्य जिनस्तवनप्रमुखैः स्तुति-नृत्य-गीतगान-

ध्यानादिभिः, जल-चन्दन-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-फल-अक्षतादिभिश्च भवभ्रमण - जन्म-जरा - मरण-दुःख - दमयित्रीं श्रीजिनेन्द्र-जिनेश्वरदेवानां भक्तिभावपूर्वकं दर्शनं वन्दनं पूजनञ्च क्रमशः चकार ।। ५८ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–श्रीजिनेश्वर भगवान के चरण-कमलों के अनुरागी ऐसे चक्रवर्ती भरत अन्य समस्त राजकीय कार्यों को सचिव आदि पर छोड़कर स्वयं त्रिकाल भक्तिभावपूर्वक श्रीजिनेश्वर भगवान के दर्शन, वन्दन एवं पूजनादि करते थे। विविध प्रकार के तीर्थ-जल, चन्दन, सुगन्धित सुमनों, सर्वत्र प्रसरणशील सुरभित धूप, शुद्ध घृतमिश्रितदीपक, मधुर मिष्ठान्न-नैवेद्य, उत्तम फल तथा अखण्ड अक्षतादि से पूर्ण श्रद्धा-विश्वास-आस्था के साथ सांसारिक समस्त दुःखविनाशिनी श्रीजिनेश्वर की भक्ति, पूजा-पूजनादि में नित्य मग्न-लीन रहते थे ।। ५८ ।।

[५९]

☐ **मूलश्लोकः–**

इदं किं नो सत्यं किमु न स तदाष्टापदगिरिः,
न किं नित्यं तीर्थं जिनकृतकृतान्ते निगदितम् ।
सुराधीशास्तस्मिन् किमु न जिनपूजां विदधिरे,
प्रभाभूतां पूजां किमु न मनुते मीलितदृशा ।। ५९ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–ये प्रवादिनः पूजापद्धतिं कपोल-कल्पितामशास्त्रीयां स्वीकुर्वन्ति, तान् प्रति कथनमिदम्-किं श्रीभरतचक्रवर्त्तिशासनकाले श्रीअष्टापद (तीर्थ) पर्वतो नासीत् ? यत्र चक्रिणा श्रीभरतेन वर्त्तमानकालीन-चतुर्विंशतिजिनेश्वराणां श्रीवृषभादि-वीरजिनान्तिकानां भव्यप्रतिमागृहाणि चैत्यानि-मन्दिराणि निर्मापितानि ? किं जिनागमा असत्यं, यत्र एतद् वर्णनं विशदरूपेण प्राप्यते ? किम् सर्वसुरासुरेन्द्रादिभिर्देवैः सर्वसुखदायिनी पूजा न कृता ? एतत् तु सर्वथा सत्यं चेत् परम प्राचीना प्रभावशालिनी प्रभोर्मूर्तिपूजा मीलितनयनैः श्रद्धावनतैस्तत्र भवद्भिः कथम् न स्वीक्रियते ।

❀ **हिन्दी अनुवादः**–जो प्रवादीजन पूजापद्धति को अशास्त्रीय तथा कपोलकल्पित मानते हैं, उनके प्रति यह कथन है कि–क्या श्रीभरतचक्रवर्ती के शासनकाल में यह श्रीअष्टापद (तीर्थ) पर्वत नहीं था ?, जहाँ चक्रवर्ती भरत ने वर्तमानकालीन श्रीऋषभादि-वीरजिनान्तिक सर्वजिनेश्वर भगवन्तों की मूर्त्ति-प्रतिमाएँ मणिरत्नमय भराकर प्रतिष्ठित की थीं । क्या वह जिनागम असत्य है, जिसमें मूर्त्तिपूजा के स्पष्ट प्रमाण तथा उक्त कथन की सत्यता प्रमाणित है ? क्या सर्वसुरासुरेन्द्रादि समस्तदेवों ने सर्व-सुखदायक मूर्त्तिपूजा नहीं की थी ? यदि यह

पूर्णतया सत्य है तो परमप्रभावशालिनी जिनमूर्त्तिपूजा को श्रद्धावनत नयनों से तुम स्वीकार क्यों नहीं करते हो ? ।। ५९ ।।

[६०]

□ **मूलश्लोकः–**

वरं चित्रं दृष्ट्वा सुभगमधुना तुष्यति नरः,
भयाकारं चित्रं विदलति न कस्यान्तरशमम् ।
वरां शान्तिं दत्ते मदयति च नार्य्याः प्रतिकृतिः,
जिनाधीशं बिम्बं परिहरति तापं रचयितुः ।। ६० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–सुविदितमेतत् समेषां सुरोमुषीमतां यत् सुन्दरं चित्ताकर्षकं चित्रं वीक्ष्य सर्वे जनाः प्रसन्नतां आह्लादमनुभवन्ति । भयङ्करं भूत-प्रेत-सिंह-व्याघ्रादीनां चित्रं वीक्ष्य भीतिं लभन्ते । मधुस्मितां तुङ्गकुचां चपल-नेत्रां युवतिप्रतिकृतिं वीक्ष्य मोहोदयो भवति । कामोत्तेजना जागर्ति । चित्तं अशान्तं भवति । एतदपि सर्वे स्वीकुर्वन्ति-नात्र लेशमात्रमपि सन्देहस्यावकाशः । एवमेव शास्त्रोक्तवचनैः स्वानुभवैश्च मयोच्यते । यत् प्रभोः शान्तां नितान्तकान्तां प्रतिमां निरीक्ष्य भव्यपुरुषाणां चेतस्सु वचनातीतशान्तिरवाप्यते ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–समस्त बुद्धिमान् जीव जानते हैं कि चित्ताकर्षक मनोहर चित्र को देखकर सभी प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। भयंकर भूत, प्रेत, सिंह, व्याघ्र आदि के चित्र को देखकर भीति का अनुभव करते हैं। मधुर मुस्कान, यौवन से भरपूर युवती के चित्र को देखकर मोह का उदय, चित्त की अशान्ति, कामोत्तेजना-जागृति होती है। इसे भी सभी स्वीकार करते हैं। ठीक इसी प्रकार शास्त्रोक्त एवं स्वकीय अनुभव से भी मैं कहता हूँ कि प्रभु की जिनेश्वर भगवान की नितान्त कान्त शान्त प्रतिमा के दर्शन मात्र से अनिर्वचनीय शान्ति प्राप्त होती है ॥ ६० ॥

[६१]

☐ **मूलश्लोकः**–

प्रमाणीभूतेयं जिनपरिषदेषां च प्रतिमाः,
सदा पूज्यन्ते स्माऽमर-मनुजनाथैः सहृदयैः।
इदं सर्वं सत्यं निखिलनिगम पश्यतु जनः,
सपर्या देवानां दुरितदवदाहं शमयति ॥ ६१ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–श्रीजिनेश्वरदेवस्य परिषदिव दिव्य-समवसरणमागमेषु प्रथिततरम्। प्रभोः मूर्त्ति-प्रतिमा पूजा च प्रामाणिकतां भजताम्। दिव्यैर्देवैर्नरैः

स्वमनसा वाचा कर्मणा श्रद्धया च पूज्यते जिनप्रतिमा । एतत् सर्वं सत्यानुप्राणितं निजभ्रमान्धकारं दूरीकर्त्तुं श्रीजैनागमशास्त्राणि जैनेतरवेद-वेदाङ्गानि शास्त्राणि चानुसन्धेयानि सर्वत्र मूर्त्ति-प्रतिमापूजनस्य प्रामाणिकं पारमार्थिकं रहस्यमुद्घाटितमास्ते । देवाधिदेव-श्रीजिनेश्वरभगवतः पूजा तु निःसन्देऽहं सर्वप्रकारेण पाप-ताप-सन्तापान् दूरयति । निखिलानन्दं प्रकाशयति चान्तरीयम् ।। ६१ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—परम श्रद्धास्पद श्रीजिनेश्वर भगवान की द्वादशपर्षदा के समान समुद्भासित दिव्य समवसरण जैनागम शास्त्रों में भी प्रसिद्ध है । प्रभु की प्रतिमा तथा उसकी पूजा पूर्णतया श्रीजैनागमशास्त्रीय प्रामाणिकता पर आधारित है । किंचिद् मात्र भी कपोल-कल्पना का विषय नहीं है । देव, मनुष्य और तिर्यंच प्राणियों ने सदैव मन, वचन और काया से इस मूर्त्ति-प्रतिमा की आराधना, पूजा तथा सेवाभक्ति आदि की है । यह सभी सत्य से अनुप्राणित है, अपनी भ्रान्ति के गहन अन्धकार को दूर करने के लिए आप जैन आगम शास्त्र तथा जैनेतर वेद-वेदाङ्ग इत्यादि का भी अनुशीलन कर सकते हैं । सर्वत्र मूर्त्ति-प्रतिमा तथा उनकी पूजा प्रामाणिक एवं पारमार्थिक स्वीकृत है । देवाधिदेव

श्रीवीतराग-जिनेश्वर भगवान की पूजा तो निःसन्देह समस्त प्रकार से पाप-ताप-सन्ताप को दूर कर अन्तरात्मा में निहित निखिल आनन्द को प्रकाशित करती है ।। ६१ ।।

[६२]

☐ **मूलश्लोकः—**

जिनाधीशाः सर्वे सततजनतानन्दजनकाः,
क्षयेऽष्टौ कर्माणां शिवसुखमनन्तं ह्युपगताः ।
ततो देवेन्द्राद्या वरसुरभिधूपादिवसुभिः,
चितां भद्रां कृत्वा क्षितिमुखभवं देहमदहन् ।। ६२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः—**सर्वेऽपि तीर्थङ्कराः श्रीमज्जिनेश्वराः अखण्डानन्दकन्दप्रदाः सन्ति । यदा ते निजाष्टकर्मक्षयानन्तरं स्वकीयं भौतिकशरीररत्नं परित्यजन्ति, तदापि देवेन्द्रादयः सुरभितचन्दनादिकाष्ठैः चितां निर्मापयन्ति । चरमशरीरसंस्कारादिकं कुर्वन्ति ।

❀ **हिन्दी अनुवाद—**सभी तीर्थंकर श्रीजिनेश्वर भगवान समस्त प्राणिवर्ग को अखण्ड-आनन्द प्रदान करने वाले होते हैं । जब वे अपने अष्ट कर्मों का सर्वथा क्षय होने पर अपने भौतिक शरीर का परित्याग करते हैं, तब इन्द्रादि देव सुरभित चन्दन-धूप आदि पदार्थों की चिता

सजाकर प्रभु के शरीर का अन्तिम संस्कार करते हैं ।। ६२ ।।

[६३]

□ **मूलश्लोकः–**

ततस्तां नीरोघैः - र्जमदसुरनाथा अशमयन् ,
बलीन्द्राद्या देवास्त्रिभुवनगुरूणां च विमला ।
वरा द्रंष्टाः नीत्वा निजनिजनिकेतं समगमन् ,
वरां स्थाप्यं नित्यं निशदिनमहो तां तु सिसिचुः ।। ६३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–प्रत्येकेषामिन्द्राणां कार्यं विभक्त-मतः क्रमिकं यथा स्यात् तथा स्वकीयं कार्यं तन्वन्ति । अथ मेघकुमार - नामकेन्द्रस्तावत् तीर्थोदकैः निषिच्य चितां शमयति । ततश्च बलीन्द्रादयश्चत्वारः प्रमुखेन्द्राः प्रभोः वरा द्रंष्टाः नीत्वा व्रजन्ति, तथा च तां स्वस्थाने रत्नमय-मंजूषायां स्थाप्य त्रिकालं पूजयन्ति ।। ६३ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–श्रीजैनशास्त्रानुसार भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष-वैमानिक इन चार निकायों के कुल ६४ इन्द्र हैं तथा असंख्य देव हैं । वे प्रभु की भक्ति में क्रमशः स्वकीय कार्य करते हैं । मेघकुमार देवेन्द्र तीर्थों के पवित्र जल से चिता प्रशान्त करता है तथा बलीन्द्रादि चार इन्द्र तभी प्रभु की चार दाढ़ लेकर जाते हैं तथा उनको अपने-अपने

स्थान में रत्नमय मंजूषा में स्थापित करके प्रतिदिन पूजन करते हैं ।। ६३ ।।

[६४]

□ **मूलश्लोकः–**

विधातुं व्यापारं वरविपुलयानैर्वसुभृतैः ,
वणिग् व्यापारार्थी जलधिपरतीरं समगमत् ।
अकस्मात् तद् यानं निखिलमपि रुद्धं विधिवशात् ,
परां चिन्तां लेभे किमपि न विधातुं शमशकत् ।। ६४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–कश्चिद् व्यापारी अनेकजलवाहनानि नीत्वा जलमार्गेण सागरान्तं जगाम । ततश्च विविध-धन-धान्यैः पूर्णाणि वाहनानि सम्पाद्य प्रत्यावर्त्तमानस्सागरेऽतर्कितरूपेण चिन्तातुरः सञ्जातो यतस्तस्य जलपोतानि सहसैव निरुद्धानि । कृतेऽपि महत् प्रयासे न किमपि सञ्जातं ततश्च चिन्तासागरे निमग्नः किमपि कर्तुमपि न शशाक ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–कोई व्यापारी, अनेक जलयान-जहाज लेकर व्यापार के लिए सागर पार गया तथा वहाँ उसने प्रभूत मात्रा में धनोपार्जन किया । जब वह व्यापारी धन-धान्य से सम्पन्न अपने जलयानों के साथ आ

रहा था तो मध्य सागर में उसके जलयान सहसा ही रुक गये। अनेक प्रकार के प्रयास करने पर भी वे टस से मस तक नहीं हुए तो व्यापारी चिन्ता के सागर में निमग्न कुछ भी करने में समर्थ नहीं हुआ ॥ ६४ ॥

[६५]

□ **मूलश्लोकः—**

कुलीनं स्वं देवं विपुलकुसुमैः मोदकवरैः,
तदानीं सद्भक्त्या विपुलतरनत्यातमयजत् ।
परं प्रीतो भूत्वाऽप्यचकतभुक्तेरधिगमं,
स्फुरन्ती वीरस्य परमप्रतिमाश्चर्यजननी ॥ ६५ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—चिन्ता चान्तचैतसिकस्य तस्य व्यापारिणो मनसि समायातं यत् स्वकीयकुलाराध्यदेवस्य स्मरणं वन्दनं कर्त्तव्यमिति। अतः स समुपलब्धैः विविध-कुसुमैः मोदकादिभिः निष्ठया मनोयोगेन च वारम्वारं प्रणामपूर्वकं तं अपूजयत्।

तस्य भक्त्या प्रसन्ना देववाणी बभूव, यत् एका वीतराग-श्रीजिनेश्वरस्य जीविता चमत्कारिणी प्रतिमा वर्तते ॥ ६५ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—चिन्तातुर उस व्यापारी के मन में

आया कि अपने कुलदेव का स्मरण-वन्दन करना चाहिए। अतएव उपलब्ध पुष्पादिक से पूर्ण निष्ठा एवं मनोयोग से वारंवार नमन-वन्दन आदि के द्वारा उसने कुलदेव की पूजा सम्पन्न की। उसकी नैष्ठिक भक्ति से प्रसन्नता सूचित करते हुए देववाणी हुई कि एक मात्र जीवित असीम परम चमत्कारिणी वीतराग श्री जिनेश्वर भगवान की भव्य मूर्त्ति-प्रतिमा है ॥ ६५ ॥

[६६]

□ **मूलश्लोक :-**

त्वया रीत्या पूज्या विगलितविषादेन मनसा ,
शिवं भद्रं यास्यत्यनुपदमसौ प्रोच्य निरगात् ।
कृतं सर्वं तेनाऽपि गतनिगडं यानमचहात् ,
इदं सर्वं सत्यं जिननिगदिते पश्यतु जनः ॥ ६६ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**-त्वमनया रीत्या प्रसन्नेन चेतसा श्री जिनेश्वरदेवानां मूर्त्तिपूजां कुरु। अवश्यमेव परमं पदं मोक्षमवाप्स्यसि। इत्थं प्रोच्य भगवान् श्रीआदीश्वरः प्रतस्थे। श्रीभरतचक्री अपि प्रभोः कथनानुसारेण सर्वं कृतवान् इति जैनशास्त्रेषु निबद्धमास्ते। इति विश्वस्य शान्तेन चेतसा ग्रन्थावलोकनं कुरु सन्देहमपाकुरु ॥ ६६ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—"तुम विधि-पूर्वक प्रसन्नचित्त होकर श्री जिनेश्वरदेव की मूर्त्ति-प्रतिमा की पूजा करो। अवश्य ही परमपद-मोक्ष तुम्हें सुलभ होगा।" ऐसा कह कर श्री आदीश्वर भगवान प्रस्थान कर गये। सम्राट् श्री भरत चक्रवर्त्ती ने भी प्रभु की वाणी का अक्षरशः अनुसरण किया। ऐसा श्री जैन शास्त्रों में स्पष्टतया उल्लिखित है। तुम (मूर्तिविरोधी) भी जैन-जैनेतर शास्त्रों का सम्यक्प्रकारेण अनुशीलन, अवगाहन करके अपने सन्देह को दूर करो तथा मूर्तिपूजा के प्रति पूर्णतया श्रद्धावान् बनो ॥ ६६ ॥

[६७]

□ **मूलश्लोकः**—

विना चैत्यं मूर्तिर्नयनपथमायाति न भुवि,
प्रतिष्ठाप्या तस्मिन् जिनवरपतेश्चाप्यनुकृतिः ।
विना दीपं गेहं सुभगमपि नक्तं न सुखदं,
प्रतिष्ठाप्या कार्यादृविरपि जिनेन्द्रस्य शिवदा ॥ ६७ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थ** :—मन्दिरमन्तरा संसारे दर्शनाय मूर्तिर्न प्राप्यते। अत एव पूर्वं मन्दिरं निर्मापय, ततश्च प्रभोः प्रतिमायाः रचना, शास्त्रानुसारेण विधिवत् प्रतिष्ठा च कार्या। श्रीजिनेन्द्रदेवस्य प्रतिमायाः शोभा अङ्गरचना च सुन्दररीत्या भक्ति-भावेन कर्त्तव्या। जिनप्रतिमा

मोक्षप्रदा हितकारिणी श्रेयकारिणी च वर्त्तते । यथा रात्रौ दीपमन्तरा गृहं न शोभते तथैव मूर्त्तिमन्तरा न मन्दिरम् । अतः मूर्त्तिस्थापना पूजनं च अस्माकं अवश्यमेव कर्त्तव्यमिति ।

❋ **हिन्दी अनुवाद**–विश्व में मन्दिर के बिना दर्शनीय मूर्त्ति-प्रतिमा दृष्टिगोचर नहीं होती, अत एव सर्वप्रथम मन्दिर का निर्माण करवाना चाहिए । तदनन्तर शास्त्रीय विधान से विधिपूर्वक मूर्त्ति-प्रतिमा स्थापित करवानी चाहिए । मूर्ति-प्रतिमा की अति सुन्दर अंगरचना पूर्ण भक्ति एवं निष्ठा से करनी चाहिए । श्री जिनेश्वर प्रभु की मूर्ति-प्रतिमा भवभयविनाशिनी तथा परम पद-मोक्षदायिनी है । जैसे रात्रि में दीपक बिना गृह नहीं शोभता है, वैसे प्रभु की मूर्त्ति बिना मन्दिर नहीं शोभता है । अतः प्रभु की मूर्ति की स्थापना-प्रतिष्ठा तथा अहर्निश विधिपूर्वक त्रिकाल पूजा-पूजनादि ही हमारा परम कर्त्तव्य है ।। ६७ ।।

[६८]

□ **मूलश्लोकः–**

विधत्ते यश्चैत्यं प्रसरति च तस्यातिमहिमा ,
धनाधिक्यं धर्मं प्रतिदिनमसावर्जयति वै ।
शिवं कर्त्तुर्दातुरनुमतिविधातुश्च नियतं ,
ततश्चैत्यं कार्यं भवभयविहर्तुश्च प्रतिमा ।। ६८ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यो सद्भाग्यशाली पुरुषः मन्दिर-निर्माणं वितनोति तस्य विमला कीर्त्तिः शरच्चन्द्रचन्द्रिकेव सर्वत्र दिग्दिगन्तेषु प्रसरति। शोधितसत्यमेतद् यत् भौतिकधनाद् धर्मधनार्जनं वरम्। श्रीजिनेश्वरभगवतो मूर्त्तिः-प्रतिमा आराधनं भवभीतिहारि चेतःप्रसादकारि, अन्तर्मलापहारि वर्त्तते। ये च श्रीजिनेश्वरस्य मूर्त्ति-प्रतिमां-बिम्बं निर्मापयन्ति, अनुमोदयन्ति कुर्वन्ति च ते सर्वेऽपि क्रमशः स्वर्गापवर्गादिकं लभन्ते।

卐 **हिन्दी अनुवाद**–जो सद्भाग्यशाली पुरुष मन्दिर का निर्माण करवाता है, उसकी शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों के समान दुग्ध धवल कीर्त्ति सर्वत्र फैलती है। वस्तुतः यह परीक्षित सत्य है कि भौतिक धन की अपेक्षा धर्मरूपी धन का उपार्जन श्रेष्ठ है। श्रीजिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा की आराधना भव-संसार का भय दूर करने वाली, चित्त को प्रसन्न करने वाली तथा आत्मा के अभ्यन्तर कर्म-दोषों को विनष्ट करने वाली अत्युत्तम प्रामाणिक है। जो लोग जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा-जिनबिम्ब बनवाते हैं, बनाते हैं या अनुमोदित करते हैं, वे सभी क्रमशः स्वर्गादि का सुख यावत् मोक्ष का भी शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं॥ ६८॥

□ **मूलश्लोकः—**

जिनोक्तो धर्मोऽयं प्रभवति यथा विश्ववलये ,
तथा कार्यो यत्नः प्रवचनविधौ वक्ति सुमुनिः ।
लतावन्नो धर्मः स्वयमिह जगत्यां प्रसरति ,
द्वयं चाङ्गं तस्य प्रवचनविधानं जिनगृहम् ।। ६९ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—त्रिकालदर्शिना वीतरागेण विभुना श्रीजिनेश्वरदेवेन प्ररूपितो धर्मो येन प्रकारेण विश्वस्मिन् विश्वे प्रचारं प्रसारमाप्नुयाद्, तेन प्रकारेण सर्वदा सर्वथा निष्ठया श्रद्धया पूर्णमनोयोगेन प्रयत्नो विधेयः । विशुद्धोऽयं श्रीजैनधर्मः लतेव संसारचक्रे प्रसरति । साम्प्रतमपि तत्त्वमनीषिभिः मुनीश्वरैः स्वकीयेषु प्रवचनकालेषु प्रोच्यते । यत् अस्य समुचितप्रकारेण प्रचारस्य प्रसारस्य च सर्वोत्कृष्टं साधनयुगलं आस्ते-प्रवचनं जिनमन्दिरञ्च ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—त्रिकालदर्शी वीतराग विभु श्रीजिनेश्वरदेव द्वारा भाषित यह धर्म, जिस प्रकार भी सम्पूर्ण विश्व की सद्भावना सदाचरण का विषय बने, उसी प्रकार शुभ प्रयत्न करना चाहिए । यह विशुद्ध जैनधर्म सुन्दरलता (वेलड़ी) के समान विश्व में फैल रहा

है। वर्त्तमानकाल में भी तत्त्वमनीषी सन्त महापुरुष फरमाते हैं कि जैनधर्म के प्रचार-प्रसार के लिए दो मुख्य साधन हैं—(१) **जिनप्रवचन** तथा (२) **जिन-मन्दिर** ॥ ६९ ॥

[७०]

□ **मूलश्लोकः—**

यथा श्रोतावर्गः जिनप्रवचने श्रोतुमधिका,
महत्यां यात्रायां जिनवरप्रभो - र्दर्शनकृते ।
तथा चैत्यारम्भे स्नपनसमये चार्हतगृहे,
जिनोक्तो धर्मोऽयं प्रसरति दिगन्ते शिवकरः ॥ ७० ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—महापुरुषाणां सूरीश्वराणां सुधीश्वराणाञ्च जिनप्रवचनकालेषु श्रोतुमभिलाषुकाः बहवो जनाः समायान्ति । यथा जिनतीर्थादियात्राप्रसङ्गेषु महती जनता एकत्रीभूय गच्छति, तथैव जिनमन्दिरेषु यदा लघु-बृहत् शान्तिस्नात्रं तथा श्रीसिद्धचक्रादिमहापूजनानि भवति । तदापि बहुतराः जनाः समायान्ति, जिनभावभाविता भवन्ति । कुर्वन्ति च निजजीवनसाफल्यम् इत्थं श्रीजैनधर्मप्रसारः प्रचारश्च दिग्दिगन्तेषु सुखं शान्ति स्थापयन् प्रसरति ।

❀ **हिन्दी अनुवादः**—परमाचार्य, महापुरुष तथा

मनीषियों की जिनप्रवचनवाणी का लाभ लेने के लिए सुनने की इच्छुक जनता उमड़ पड़ती है। जैसे तीर्थ-यात्राओं के शुभप्रसंग पर तथा श्रीजिनेन्द्रभक्तिमहोत्सवादिक में विशालकाय जनगण उमड़ पड़ता है। ठीक उसी प्रकार जब जिनमन्दिरादि में लघु या बृहत्शान्तिस्नात्र तथा श्रीसिद्धचक्रादि महापूजन इत्यादि का आयोजन होता है तब धर्मश्रद्धालु जनता अधिक संख्या में उपस्थित होती है और श्रीजिनभक्तिभावना से उद्‌भावित होकर अपने जीवन को धन्य बनाती है–सफल करती है। इस प्रकार श्रीजैनधर्म का प्रचार-प्रसार दिग्-दिगन्त में सुख-शान्ति की स्थापना करता हुआ विस्तीर्ण होता है ॥ ७० ॥

[७१]

☐ **मूलश्लोकः–**

समापन्ने पूज्ये जिनजननकल्याणदिवसे ,
विशाले सच्चैत्ये प्रचुरकुसुमामोदभरिते ।
मृदङ्गस्यारावैः श्रुतिसुमधुरै - र्वर्णनिकरैः ,
जिनस्तोत्रं स्नात्रं नमनमपि कार्यं नरवरैः ॥ ७१ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–परमश्रद्धास्पदानां सच्चिदानन्द-स्वरूपाणां श्रीजिनेश्वराणां च्यवनादि - पञ्चकल्याणकेषु विशेषतो जन्मकल्याणकेषु सुरम्ये विशाले सुगन्धित-

कुसुमादिभिः सुरभिते जिनमन्दिरे - जिनचैत्ये श्रुतिरस-समन्वितैः वर्णसमूहैः मृदङ्गादिध्वनिभिश्च श्रीजिनस्तोत्रं शान्तिस्नात्रं वन्दनं गायनं नर्त्तनञ्च जनैः श्रद्धाभावसमन्वितैः दत्तचित्तैः सुमधुरतया कर्त्तव्यम् ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—परमश्रद्धेय सच्चिदानन्द स्वरूपी श्रीजिनेश्वरदेव के च्यवनादि पंचकल्याणक होते हैं। वैसे तो इन सभी कल्याणकों में देवपूजन-गीतगान-ध्यान आदि का आयोजन करना चाहिए। किन्तु विशेष रूप से प्रभु के जन्मकल्याणक के दिव्य प्रसंग पर तो कुसुमों से सुगन्धित, विशालकाय जिनमन्दिर में कर्णकुहरों में अमृत सा घोलने वाली सुमधुर शब्दसन्तानमयी स्वरलहरी एवं मृदंग इत्यादि तालवाद्यों के साथ श्रीजिनस्तोत्र, शान्ति-स्नात्र, वन्दनगीत, भक्तिनृत्य आदि का रोचक भक्तिपूर्ण आयोजन आत्मश्रद्धा-भावना से दत्तचित्त होकर, मनमोहकरूप में ही करना चाहिए ।। ७१ ।।

[७२]

☐ **मूलश्लोकः**—

सदा पूज्यो वन्द्यो जिनपतिरखण्डामृतमयः,
प्रियो ध्येयो गेयो विधुरिव मनोज्ञो नयनयोः ।
गुणग्रामारामा भवभवविरामा भगवतः,
विमुक्तिं वाञ्छद्भिः प्रतिदिनमुपेयाः सहृदयैः ।। ७२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—-अगाधाबाधाखण्डावच्छिन्नानन्द-घनस्वरूपाणां विदितवेदितव्यानां सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-चर्चितानामर्चितानाञ्च श्रीजिनेश्वरदेवानां दर्शनं वन्दनं पूजनं गायनं च अतिप्रेम्णा, सद्भक्त्या कर्त्तव्यानि। विचिन्त्यतां तावत् यदा नयनमनोज्ञश्चन्द्रो द्वितीयायां तिथौ सश्रद्धैर्जनैर्वंद्यते तदा यस्य परमकरुणा - वरुणालयस्य गुणग्रामाः आरामा इव सुखप्रदाः भवदुःखविरामाः सन्ति तस्य वन्दना पूजा च कथं न कर्त्तव्या ? अवश्यमेव करणीयेति भावः। श्रद्धावनतैः सहृदयैः मुक्तिमभिल-षद्भिस्तु प्रतिदिनं प्रभोः गुणग्रामाः स्मरणीयाः, वन्दनीया च प्रभोः सर्वसुखकरी नितान्त - कान्ता परमशान्ता जिनमूर्त्तिः—प्रतिमा एव।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—अनन्त, अगाध, अबाध, आनन्द-घनस्वरूपी, परमज्ञानी, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सम्पन्न, त्रिलोकपूज्य श्रीजिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा का दर्शन अतीव मनोहारी एवं चन्द्रमा के समान नयनसुखकारी है। अतः श्रीजिनेश्वरदेव का वन्दन, पूजन, भक्ति, गीतगान सब सर्वदा सर्वथा सद्भक्ति से करना चाहिए। सोचिये कि जननयन - सुखकारी द्वितीय चन्द्र वन्दनीय है तो जिस परमोपकारी प्रभु के गुणग्राम सांसारिक दुःखों का विनाश

करने में समर्थ हैं, उसकी वन्दना, पूजा तो नितान्त आवश्यक है। मुक्ति चाहने वाले भक्तजनों को प्रशस्त आलंबन के लिए तो नितान्त कान्त परमशान्त जिनमूर्त्ति-प्रतिमा वन्दनीय-पूजनीय है ।। ७२ ।।

[७३]

☐ **मूलश्लोकः–**

वितत्यैवं धर्मं जिनपतिवरेणामलदृशा,
समीक्ष्येदं प्रोक्तं शिवसुखमनन्ताय भविने।
महामोहध्वंसी जिनवरसपर्या शिवकरी,
वरैर्द्रव्यैः कार्या भवभयहरैः स्तोत्रनिवहैः ।। ७३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–भगवता श्रीआदीश्वरेण ऋषभेण धर्मतत्त्वं विस्तीर्य राग-द्वेषरहिताभ्यां लोचनाभ्यां निरीक्ष्य भक्तजनानां कल्याणाय प्रोक्तम्–एषा श्रीजिनेश्वरदेवानां पूजा महामोहान्धकारविनाशयित्री प्रकाशयित्री च शिवङ्कराणां मोक्षतत्त्वानाम्। अतः सांसारिक - कष्ट-निवारणार्थं भवबन्धनोच्छेदकर्तृभिः स्तोत्रैः सद्द्रव्यैः श्रद्धया जिनपूजा विधातव्या ।। ७३ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–भगवान श्रीआदीश्वर-ऋषभदेव ने धर्मतत्त्व का विस्तार करके रागद्वेषादि कषायरहित नेत्रों

से सारी दूरंदेश स्थिति को देखकर भक्तजनों के सहज कल्याण के लिए जिनपूजा का निरूपण-प्रतिपादन करते हुए कहा है कि श्रीजिनेन्द्रपूजा घोर अज्ञान रूपी अन्धकार का विनाश तथा शिवंकर मोक्षतत्त्व का प्रकाश करने वाली है। अतः सांसारिक कष्ट को दूर करने के लिए भव-बन्धन-छेदक स्तोत्रों तथा द्रव्यों से श्रद्धा एवं भक्ति से जिनपूजा अवश्य ही करनी चाहिए ।। ७३ ।।

[७४]

☐ **मूलश्लोकः–**

विधत्ते यश्चैवं भवति स च मान्यो नरवरः,
कषायाः लीयन्ते समुदयति मैत्री प्रतिजनम् ।
न तत् कार्ये कश्चिद् भवति विनिपातः परिभवः,
वरैर्द्रव्यैरच्यो भुवनहितकारी जिनवरः ।। ७४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–त्रिकालदर्शिना भगवता श्रीआदीश्वरेण स्फुटतरया प्रतिपादितं यत् यदि कश्चिद् भाग्यशाली द्रव्य-भावाभ्यां जिनप्रतिमां पूजयति स तु निश्चयत्वेन विश्वमान्यो भवति। तस्य कषाया विनश्यन्ति। प्राणिषु मैत्रीभावः उत्पद्यते। तस्य कार्येषु कुत्रापि विघ्नादिकं नैव भवति। जिनपूजा सर्वथा सर्वप्रकारेण सद्द्रव्य-भावैः परम श्रद्धया सम्पादनीयाः।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–त्रिकालदर्शी भगवान श्रीआदिनाथ ने कहा है कि यदि कोई भी भाग्यशाली जिनमूर्त्ति की पूजा करता है तो उस व्यक्ति के मन में भी मैत्रीभाव उत्पन्न होता है तथा विघ्नबाधाओं का निष्कासन और आनन्द का प्रकाशन होता है। अतः सर्वदा श्रीजिनमूर्त्ति की पूजा द्रव्य से तथा भाव से विधिवत् श्रद्धापूर्वक करनी चाहिए ॥ ७४ ॥

[७५]

☐ **मूलश्लोकः**–

न विद्यन्ते चास्मिन् भुवनमहितास्ते जिनवराः,
गणाध्यक्षा दक्षा विमलमतयो ये मुनिवराः।
विधीयन्ते लोकैर्नृपतिरहिते वै प्रणिधियः,
अतः स्थाप्या भव्यैर्जिनपदे मूर्त्तिरमला ॥ ७५ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–श्रीजैनागमशास्त्रानुसारेण सर्वविदितमेतद् यत् अत्रैव पञ्चमकालोऽयं (पञ्चमारः) प्रचलति। अस्मिन् पञ्चमकाले-पञ्चमारे संसारचक्रपूजिताः सर्वज्ञदेवाः श्रीजिनेश्वराः तेषां बुद्धिमन्तः श्रुतकेवलीगणधराः अपि न सन्ति। अतएव नृपतेरभावे यथा प्रतिनिधि - व्यवहारस्तथैव श्रीजिनस्थाने विमला श्रीजिनमूर्त्तिः भव्यपुरुषैः प्रतिष्ठापयित्वेति आकूतम्।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–श्रीजैनागम शास्त्रों के अनुसार यह बात सुस्पष्ट एवं प्रचलित है कि सम्प्रति प्रवर्तितकाल पञ्चम आरे के रूप में व्यवहृत है। इस पञ्चम आरे में विश्ववन्द्य-विश्वविभु वीतराग श्रीजिनेश्वर भगवान तथा उनके श्रुतकेवली गणधर नहीं होते। जिस प्रकार व्यावहारिक विश्व में राजा या शासनाधिकारी के अभाव में उसका प्रतिनिधि कार्य-सम्भार ग्रहण करता है, तथा सभी उसके आदेश को राजावत् पालते हैं, उसी प्रकार साक्षात् श्रीजिनेश्वर भगवान के अभाव में उनकी मूर्त्ति-प्रतिमा ही प्रतिनिधि स्वरूप है। इसलिए उसकी स्थापना परमावश्यक है ।। ७५ ।।

[७६]

□ **मूलश्लोकः–**

नृपस्थाने कृत्वा निजकृतिकृते चेत् प्रतिनिधिं,
भवेन्मान्यो वन्द्यो वहति जनताज्ञां च शिरसा।
प्रवर्तेरन् यस्मात् जनहितकराः व्यावृतिवराः,
विधातव्या रम्या विमलमतिभिर्मूर्त्तिरमला ।। ७६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–व्यावहारिक जगति सर्वैरवलोक्यते यत् प्रतिनिधिः अधिकारीवत् भवति। सामान्यजनै-रादरणीयः सम्माननीयः। प्रभोर्मूर्त्तिः–प्रतिमा

प्रतिनिधिरूपा अस्ति। तामेवाश्रित्य जगद्व्यवहाराः व्यावृतिवराः मङ्गलमयाः भवन्ति। अतः तस्य विरोधं परित्यज्य प्रभोः प्रभावमयी मूर्त्तिः–प्रतिमा प्रतिष्ठापयितव्येति।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–व्यवहार-विश्व में सभी अनुभव करते हैं कि प्रतिनिधि, अधिकारी के समान सम्माननीय होता है। प्रभु की मूर्त्ति-प्रतिमा भी प्रतिनिधि स्वरूप है। उसका अवलम्बन-आलम्बन लेकर संसार के व्यवहार-व्यापार मंगलमय होते हैं। अतः मूर्त्ति-प्रतिमा के विरोध को त्याग कर प्रभु की प्रभावमयी मूर्त्ति-प्रतिमा की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।। ७६।।

[७७]

□ **मूलश्लोकः–**

शिवं कर्त्तुर्भर्तुः स्वनुमितिविधातुश्च नियतं,
ततः कार्यं बिम्बं भवभयभिदो भव्यमनुजैः।
भवद्भिः किं नोक्तं सततमिह व्याख्यानसमये,
यथा जैनो धर्मः प्रथयति विधेयोऽस्ति स तथा।। ७७।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–ये मनीषयो मूर्त्तिं न स्वीकुर्वन्ति तेऽपि वदन्ति-यद् ये भाग्यशालिनो जनाः सुकार्यं धर्म-प्रचारादिकं वा तन्वन्ति, ते तु उत्तमं फलं लभन्ते। तैः

सार्धमपि अनुमन्तारः सहयोगकर्तारोऽपि चोत्तमं फलमाप्नुवन्ति। येन केनापि प्रकारेण श्रीजैनधर्मप्रसारः प्रचारश्च स्यात्–इत्यपि ते मनीषयः स्वीकुर्वन्ति। तदा तु भव्यपुरुषैः श्रीजैनधर्मप्रचारार्थमवश्यमेव जिनमन्दिरं-जिनालयं जिनमूर्त्तिः-जिनप्रतिमा च निर्मापयित्वेति रहस्यम्।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–जो मूर्त्तिविरोधी मनीषी मूर्त्ति-पूजा को स्वीकार नहीं करते, वे भी अपने प्रवचन-व्याख्यान में कहते हैं कि हे भाग्यशालियो! तुम्हें धर्मप्रचार-प्रसार के सत्कार्य अवश्य करने चाहिए, जिससे उत्तम फल की प्राप्ति होती है। सुकार्यकर्त्ता के साथ ही अनुमोदन एवं सहयोगकर्त्ताओं को भी समानरूपेण उत्तम फल प्राप्त होता है। जैनधर्मप्रचार-प्रसार के लिए जिनमन्दिर-जिनालय एवं जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा अत्यन्त सहायक है तथा भवभय - विनाशिनी है। अतः इसकी स्थापना अनिवार्य है ॥ ७७ ॥

[७८]

□ **मूलश्लोकः–**

निवासे साधूनां यदि युवति चित्रं विलिखितं,
विकृत्यै तत् प्रोक्तं निवसति न कश्चिन्मुनिगणः।
समाधौ लीनानां श्रमणसुभगानां यदि सखे!,
ध्रुवं शान्तिं लोकाद् विरतिकृतये स्यान्मतमिदम् ॥ ७८ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–श्रमणानां-मुनीनां जैनोपाश्रयेषु भित्तिषु अथवा कुत्रापि युवतिजनचित्रं विलिखितं भवेत् चेत् तत् विकृतिजनकं मन्यते। काउसग्गध्याने समाधौ वा लीनानां श्रमणानां चित्रं चेत् संसारविरक्तिजनकं शान्तिप्रदं प्रोक्तम् ॥ ७८ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–श्रमण-मुनिजनों के जैन उपाश्रय में दीवारों अथवा कहीं पर भी युवती का चित्र उत्खचित (कोरा हुआ) हो तो वह विकृति का कारण माना जाता है। मुनिजनों को वहाँ विश्राम करना जैनसिद्धान्त-शास्त्रीय रीति से कल्पता नहीं है। काउसग्गध्यान, समाधि में मग्न-लीन महापुरुषों श्री तीर्थंकर भगवन्तों आदि का यदि चित्र हो तो सांसारिक विरक्ति का कारण तथा शान्तिप्रद माना जाता है ॥ ७८ ॥

[७९]

□ **मूल श्लोकः**–

यथा साधोर्मानं शिवसुखमनन्ताय नियतं,
प्रभोरर्चा भद्रा कथमिह तु तादृक् किमिव नो ?
विशिष्टा यात्राभिर्नवनवमहैः शान्तिविधिभिः,
अवश्यं विश्वस्मिन् स्फुरति महिमा विश्वविदितः ॥ ७९ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—'श्रमणानां साधूनां बहुमानं सेवा-भक्तिस्तु अनन्तसुखाय कल्पते' इति सर्वे सहमतिपूर्वक-मामनन्ति । एवं चेत् परमकल्याणकारिणी प्रभोरर्चना-पूजा कथन्न समाद्रियते ? विशिष्टरीत्या महता महोत्सवेन परमश्रद्धया निष्ठया चानुष्टिता प्रभोरर्चना-पूजा निश्च-येत्वेन अखण्डशान्तिप्रदा श्रीजैनधर्मस्य - जैनशासनस्य प्रचारयित्री, अतएव कैरपि अन्तरायो न कर्त्तव्यः ।। ७९ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—श्रमण-साधु सन्त महापुरुषों की सेवा-भक्ति अनन्त सुखदा होती है । यह निर्विवाद सत्य है । यदि ऐसी मान्यता सर्वसम्मत है तो परमात्मा-प्रभु की अर्चना का समादर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ स्वीकार करने में क्या आपत्ति है ? श्रमण-साधु-सन्त, महापुरुष भी तो प्रभु के सेवक-भक्त हैं, इतना ही नहीं किन्तु प्रभु-प्रदर्शित पथ के भी सच्चे अनुयायी हैं । मेरा तो सादर सविनय निवेदन है कि सभी प्रकार के दुराग्रहों को छोड़कर प्रभु की अर्चना-पूजा-उपासना निश्चित रूप से अखण्ड सुखशान्तिप्रद है । तथा धर्म-प्रचार-प्रसार में सहायक है । अतएव किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार का कोई अन्तराय नहीं करना चाहिए ।। ७९ ।।

□ मूलश्लोकः--

यदि ग्रावा तोये तरति जलधौ पोतसदृशं,
जिनार्चा विश्वस्मिन् जनयति शिवं चेच्च कथिताम् ।
जिनार्चा मूर्तेश्चेत् सततमिह पापं तव मते,
सुधापानान्मृत्यु र्भवति वद मौनं वहसि किम् ? ।। ८० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**--नास्तिकजनाः कथयन्ति-यत् वयं तदैव जिनप्रतिमां शिवङ्करीं स्वीकरिष्यामो यदा पाषाणं सागरे जलपोतमिव तरत् प्रमाणितं भवेत् । अन्यथा तु वयं मन्यामहे यत् जिनमूर्त्ति-पूजा सर्वदा पापजननीति । समाधातुमाचार्येण कटाक्ष्यते--**यदि** तव धारणा ईदृशी वर्त्तते तदा सुधापानात् मृत्युर्भवति-इति वद । एतत् श्रुत्वा मौनावलम्बी कथं जातः ? ।। ८० ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**--मूर्त्तिपूजा का विरोध करने वाले नास्तिकजन अनर्गल वार्त्तालाप प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि--हम तो तब **'श्रीजिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा'** को कल्याण-कारिणी मान सकते हैं, जब वह जलराशि-समुद्र में जहाज-नौका की तरह तैरती हुई प्रमाणित हो । अन्यथा हम तो यह मानते हैं कि जिनमूर्त्ति-पूजा सदैव पाप-जननी है । समाधान की चेष्टा से आचार्य विरोधियों पर

कटाक्ष करते हुए कहते हैं कि–यदि तुम्हारी धारणा ऐसी ही है तो तुम सुधा-अमृतपान से मृत्यु होती है, ऐसी विपरीत स्थिति को स्वीकार क्यों नहीं करते ? ऐसा सुनकर मौनावलम्बी क्यों बन जाते हो ? ॥ ८० ॥

[८१]

☐ **मूलश्लोकः–**

इयं त्वर्चा वर्या दलयति विमोहं भवकरं,
विधत्ते सम्यक्त्वं कुटिलपरितापं शमयति ।
चिनोतीहात्यन्तां नवनवसुखश्रेणीमनघां,
ध्रुवं सिद्धिं यच्छत्यमरपदलाभस्तु सहसा ॥ ८१ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः–**एषा श्रीजिनेन्द्रमूर्त्तिपूजा सर्वतोभावेन सर्वोत्तमतामावहति–नानाकष्टकलुषित - भवभ्रमण-हेतुं मोहनिकरमपनयति । सम्यक्त्वं प्रदाय अन्तस्तापं सन्तापं विगलयति, अभिनवसुखपरम्परां चिनोति । क्रमशः स्वर्गापवर्गं च प्रददाति । अतः निश्चप्रचमिदं यज्जिनमूर्त्तिपूजा सर्वोत्कृष्टा सर्वहितङ्करी ॥ ८१ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–सर्वज्ञ विभु श्री जिनेश्वर भगवन्त-भाषित श्री जैनागम-शास्त्रोक्त श्रीजिनमूर्त्ति-पूजा निश्चित रूप से सर्वोत्कृष्टता द्वारा सुसम्पन्न है । यह मूर्त्ति-पूजा,

अनेक प्रकार के कष्टों, पापों से कलुषित संसार - भ्रमण के मूल कारण मोह तथा अज्ञान-समूह को सर्वथा समूल विनष्ट करती है। सम्यक्त्व प्रदान करके आन्तरिक ताप-सन्ताप को भी दूर करती है तथा नूतन परम सुखद परम्परा का चयन करती है, क्रमशः स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती है। अतः निःसन्देह श्रीजिनमूर्त्ति-पूजा सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वहितकारिणी है ॥ ८१ ॥

[८२]

❀ **मूलश्लोकः–**

विना पोतं नावं जलधिपरकूलं व्रजति कः,
ऋते वै वैराग्यात् कथय किमु स्यात् संयमधनम्।
इदं शीघ्रं चित्तं भगवति न यावद्धि रमते,
कथं किं कस्याहो वद-वद सखे ! स्यात् शमसुखम् ॥ ८२ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः–**यदि जलपोतः समुद्रगामिनी नौका वा न भवेत् तदा कश्चिदपि तटान्तरं द्वीपान्तरं वा कथं गन्तुं शक्नोति ? तथैव यावत् संसारात् विरक्तिर्न भवेत् तावत् महाव्रतत्वं, को नाम धारयति ? एतच्चचलचित्तं यदि श्रीवीतराग-परमात्मनि न रमते, वद मित्र ! केन प्रकारेण मोक्षमधिगन्तुं शक्यते ? ॥ ८२ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—यदि समुद्र में विचरण करने में समर्थ नौका या जलपोत न हो तो कोई भी व्यक्ति समुद्र के दूसरे तट पर या दूसरे द्वीप में कैसे जा सकता है? ठीक इसी प्रकार यदि व्यक्ति को संसार से विरक्ति न हो तो प्राणातिपात - विरमणादि पंच महाव्रतों को कौन धारण करेगा? यह चपल-चंचल चित्त यदि श्री वीतराग परमात्मा में न रमे तो मित्र! तुम्हीं बताओ कि वह किस प्रकार मोक्ष-पद प्राप्त कर सकता है? ॥ ८२ ॥

[८३]

☐ **मूलश्लोकः—**

यथा विद्युद्यन्त्रं प्रथयति दिगालोकितवरा,
निरोधं वा तद् यद् घटयति क्षणेनैव बहुधा।
भवच्चित्तं तादृग् भगवति विलीनं त्वहरहः,
पुनर्नो वा तादृक् चलदलनिभं चञ्चलमदः ॥ ८३ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—यथा विद्युद्यन्त्रेण सपदि दिगन्तोद्योतते तथा स्वकीयस्य मनसो निरोधः (संयमः) यदि स्यात् तदा क्षणेनैवाज्ञानान्धकारो विलयमेति। आत्मप्रकाशश्चकास्ति। किन्तु सर्वं परित्यज्य मनो भगवच्चरणारविन्दं रमेत। अश्वत्थवृक्षपत्रमिव चञ्चलं न

भवेच्चेत् । परमात्मनि निरते, विरते संसारात् ध्रुवं परमपदलाभः ॥ ८३ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–जिस प्रकार विद्युत् यन्त्र के माध्यम से क्षणमात्र में ही दिग्दिगन्त आलोकित हो उठता है, ठीक उसी प्रकार मन के चाञ्चल्य-निरोध, मानसिक-संयमन हो जाने पर सहसा क्षणमात्र में अज्ञान-रूपी अन्धकार न जाने किस निलय में विलय हो जाता है, आत्मप्रकाश फैलता है, समुल्लसित होता है। ऐसी आत्मप्रकाश से प्रकाशित स्थिति को प्राप्त करने के लिए परमावश्यक यह है कि पीपल के पत्ते की तरह चञ्चल मन को परमपिता-परमेश्वर के चरणारविन्दों में एकनिष्ठ भाव से समर्पित करें। परमात्मा में मग्न-लीन तथा संसार से विरक्त होने पर अवश्य ही परमपद-मोक्ष का लाभ मिलता है ॥ ८३ ॥

[८४]

☐ **मूलश्लोकः–**

जनः सोपानस्य प्रथमवलये न्यस्य चरणं,
द्विभूमं प्रासादं परिसरति दुःखं परिहरन् ।
समुत्कण्ठो द्रष्टुं शशधरमखण्डं निशिवरं,
निराधारं कश्चित् कथय किमु रोढुं प्रभवति ? ॥ ८४ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–आधारं विना किमपि कार्यं सफलताशिखरं न चुम्बति, इति सर्वे जनाः जानन्ति। रात्रौ चन्द्रमसं द्रष्टुमभिलाषी मनुष्यो द्विभूमं प्रासादं (भवनं) आरोढुं सोपानपरम्पराया आश्रयं गृह्णाति। सोपानपरम्परामस्वीकृत्य, प्रथमपंक्तौ चरणमसंस्थापयन् केन प्रकारेण द्विभूममारोढुं समर्थः कोऽपि जनः? कथमपि नैवेत्युत्तरम्। एवमेव विचारयन्तु भवन्तो निराधारा भक्तिः कथं साधयसी स्यात् सुकुमारमतीनां सहृदयानां सश्रद्धानाञ्च जनानाङ्कृते इति। अतएव श्री जिनमूर्त्तेरालम्बनं नितान्तमावश्यकतां भजते। मुक्तिनगर्याः प्रथमसोपानभूता **मूर्त्तिपूजा** एव ॥ ८४ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–आधार के बिना कोई भी कार्य सफलता के शिखर पर नहीं पहुँचता-ऐसा सभी जानते हैं। रात्रि में चन्द्र-दर्शन के लिए लोग दुमंजिले पर चढ़ने के लिए सोपान (सीढ़ी) का सहारा लेते हैं। प्रथम सोपान पर कदम रखे बिना चढ़ना सम्भव नहीं है। विचार कीजिए कि निराधार भक्ति कार्यसाधिका कैसे हो सकती है? अतएव श्रीजिनमूर्त्ति-प्रतिमा के आलम्बन की नितान्त आवश्यकता है। मुक्ति-नगरी का प्रथम सोपान **'मूर्त्तिपूजा'** ही है ॥ ८४ ॥

❑ **मूलश्लोकः–**

सुखश्रेणी यस्यां वसति कलहंसीव सुखदा,
गुणग्रामा रामा नयनसुखधारा त्वनुदिनम् ।
महीयन्ते तस्माद् भवभयविभेतुः प्रतिकृतिः,
लभन्तां तां सिद्धिं त्विहभवभवां वा परगताम् ।। ८५ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यथा कमलवनेषु राजहंसी विचरति तथा प्रभुगुणसुमननिकुञ्जेषु भक्तिभावभरितानां सहृदयानां भक्तवृन्दानां मनांसि रमन्ते । अतएव भव्यपुरुषाः मोक्षावाप्तये परमसुखप्राप्तये प्रभोः प्रतिमां स्थापयन्ति पूजयन्ति च । भावनैर्मल्यात् तत् प्रभावाच्च मुक्तिश्रियं लभन्ते ।। ८५ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद–**जिस प्रकार कमल-वन में (कमलों के समूह में) राजहंसिनी विचरण करती है, उसी प्रकार प्रातःस्मरणीय परम पूजनीय प्रभु के गुणरूपी कमल-निकुञ्जों में भक्ति भाव से परिपूर्ण सहृदय भक्तवृन्द के पवित्र मानस विहार करते हैं, रमते हैं । अतएव भव्यजन मोक्षप्राप्ति तथा परम सुखोपलब्धि के लिए सदैव प्रभु की मूर्त्ति-प्रतिमा को प्रतिष्ठित करके अनन्त श्रद्धा एवं भक्ति से पूजते हैं और भावनात्मक निर्मलता तथा

भावविशुद्धि के सद्भाव से ही मुक्तिरूपी लक्ष्मी का वरण करते हैं ।। ८५ ।।

[८६]

□ **मूलश्लोकः–**

क्षितौ कल्याणार्थं विपुलमतिभिर्दर्शितपथाः,
प्रवर्तन्ते लोका विषमरहितेनैव सुपथा ।
विना विघ्नं शश्वद् वहति यदि राज्ञाकृतपथः,
पथे को गच्छेद् भो ! विपुलकटुकष्टेन जटिलम् ।। ८६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः–**लोककल्याणकारिभिः स्वनामधन्यैर्विद्वन्मूर्धन्यैः परमसत्यान्वेषिभिः श्रुतकेवलिभिः गणधरभगवद्भिः सरलं राजमार्ग इव निष्कण्टकः श्रीजिनपूजामार्गो निर्देशितः, तेनैव मार्गेण जनता सम्प्रति गतिमातनोति । जनता कण्टकसंकुलं पन्थानं सहसैव परित्यजति । को नाम सति सरले संक्षिप्ते भयरहिते मार्गे, कठिनेऽतिविस्तृते भयाकुले चरणौ निक्षिपेत् ? न कोऽपीत्याशयः ।

❀ **हिन्दी अनुवाद–**परमलोकोपकारी स्वनामधन्य विद्वन्मूर्धन्य परम सत्यान्वेषी श्रुतकेवली श्रीगणधर भगवन्तों ने जो राजमार्ग की भाँति सरल तथा निष्कण्टक

श्रीजिनमूर्त्ति पूजा का मार्ग निर्देशित किया है। आज भी धर्मश्रद्धालु जनता उसी मार्ग के अनुसरण में ही प्रगतिशील है। कण्टकाकीर्ण मार्ग को तो अल्प विवेकी व्यक्ति भी सरल तथा निष्कण्टक मार्ग की प्राप्ति होने पर छोड़ देता है। इस संसार में भला ऐसा कौन होगा कि जो सरल, निष्कण्टक संक्षिप्त मार्ग के रहते हुए लम्बे तथा बाधाओं से घिरे हुए भयावह मार्ग में कदम बढ़ायेगा? कोई भी नहीं, यह तात्पर्य है ॥ ८६ ॥

[८७]

□ **मूलश्लोकः—**

अयं सौम्यो मार्गो भुवनपतिना दिव्यगतिना,
जिनेनैवादिष्टो मृदुलमतये मानवकृते।
समाराध्यैवामुं मिलति यदि दिव्यां सुरगतिं,
क्रमात् प्रान्ते मुक्तिं वद परिहरेत् को बुधवरः ॥ ८७ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः—**अयं पूजापद्धतिनाममार्गोऽपि प्रामाणिकरूपेण त्रिलोकनाथेन दिव्यज्ञानिना सुकुमारमतीनां मानवानां कृते वर्णितः प्रशस्तीकृतश्च। विचारयन्तु यत् यदि सुगमेनोपायेन क्रमात् स्वर्ग-मोक्षादिकं प्राप्येत, तर्हि को बुद्धिमान् एनं सन्मार्गं परित्यजेत्? यदि मधुरौषधि-सेवनेन रोगः शाम्येत तर्हि कः कट्वौषधिं सेवेत? ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—यह मूर्त्तिपूजा - पद्धति का मार्ग प्रामाणिक रूप से दिव्यज्ञानदर्शी त्रिलोकीनाथ श्रीआदीश्वर-ऋषभदेव भगवान ने सुकुमारमति, कोमलहृदय मानवों के लिए प्रकट एवं प्रशस्त किया है। आप स्वयं विचार कीजिए कि सुगम एवं सुलभ उपाय से ही यदि क्रमशः स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति हो तो संसार का कौन-सा बुद्धिमान् इस सरल, सरस मार्ग को छोड़कर अन्यत्र श्रम-परिश्रम करेगा ? यदि मिश्री-शक्कर के समान मीठी औषधि से रोग-शान्ति सहज ही सम्भव हो तो भला कौन कटु-कड़वी दवा-औषध का सेवन करेगा ? ।। ८७ ।।

[८८]

☐ **मूलश्लोकः—**

यजन् कश्चिद् विप्रो निगमविधिना स्वं सुर-वरं ,
जुहावाग्नौ हव्यं घृतसुरभितै - र्द्रव्यमतुलैः ।
म्रियन्ते ज्वालाभिर्मृदुतनुभृतो जन्तु निवहाः ,
उपेत्योचे विप्रं मुनिवरमरालो मृदुगिरा ।। ८८ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—एकदा कश्चित् विप्रः स्वशास्त्रीय-विधिना, निजमभीष्टं देवं लक्ष्यीकृत्य घृतसुरभिः हवनीयद्रव्यैः सन्दीप्तपावके हवनं कुर्वन्नासीत् । तदा कोऽपि परमदयालुर्मुनिरवलोकयत् अनन्ताः जीवाः

यज्ञोत्थितज्वालाभिर्म्रियन्ते-इति विलोक्य स विप्रं सन्निकटागत्य प्रोचे ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–एक समय की बात है कि कोई एक विप्र-ब्राह्मण अपनी शास्त्रीय विधि से, अपने इष्टदेव को उद्देशित करके सुगन्धित घृत इत्यादि हवनीय पदार्थों से जलती हुई यज्ञाग्नि में हवन कर रहे थे, तभी परम-कृपालु एक मुनिवर ने देखा कि ऐसा करने से अनन्तानन्त जीव यज्ञाग्नि से उठती हुई ज्वाला से मर रहे हैं । ऐसा देखकर वे विप्र-ब्राह्मण के सन्निकट-समीप आये और बोले ।। ८८ ।।

[८९]

☐ **मूलश्लोकः**–

भवन्तो धर्मज्ञा विमलमतयो बोधनिचयाः ,
श्रुतीनां वक्तारः करुणहृदया विश्वमहिताः ।
परोपायैर्देवो यदि च प्रियेद् यच्छतु प्रियं ,
मुधा हिंसा पापं विधिमिह वितन्वन्ति सहसा ।। ८९ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–अहं मन्ये तत्रभवन्तो निर्मल-बुद्धयः ज्ञाननिलयः, वेदप्रवक्तारः विश्ववन्द्याः करुणहृदयाः सन्ति । अनेन विधिना अहं पश्यामि यत् अनेकानां जीवानां प्राणघातो भवति । अतो यदि केनापि अन्येन

उपायेन भवदीयो देवः प्रसन्नः स्यात् तथा प्रयत्नीयम् । एषा हिंसा तु वृथैव जायते एतत्तु पापप्रवृद्धिकरं स्यात् ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—मैं मानता हूँ कि माननीय आप, निर्मलबुद्धि ज्ञानी विश्ववन्द्य एवं परमकारुणिक हैं । इस विधि से हवन करने से अनेक जीवों की हिंसा स्वतः हो रही है । ज्वालाओं से झुलसता उनका जीवन क्षार-क्षार हो रहा है । अतएव यदि किसी अन्य उपाय से आपके अभीष्ट देव प्रसन्न हो सकें तो उस विधि से प्रयत्न करना चाहिए । निर्दोष जीवों की हिंसा व्यर्थ हो रही है । साथ ही यह हिंसा पाप को बढ़ाने वाली सिद्ध होगी ।। ८९ ।।

[९०]

☐ **मूलश्लोकः**—

इहास्ते श्रीशान्तेस्त्रिभुवनगुरोर्मूर्त्तिरतुला ।
क्षितौ केनाऽज्ञानात् विहतमतिना वै विनिहता ।।
खनित्वा प्रेक्षध्वं भवतु भवतां निश्चयमिदम् ।
तथा चक्रुर्विप्रा मुनिनिगदितं सत्यमभवत् ।। ९० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—तेन दयालुना मुनिना कथितं यत्-अस्मिन् स्थले त्रिलोकनाथस्य भगवतः श्रीशान्तिनाथ-

जिनस्य प्रतिमा केनापि अज्ञानिना पूर्वं खनित्वा भूमौ पातिता, विश्वासार्थं भवन्त उत्खात्य पश्यन्तु। जिज्ञासा-वशात् यदा ते विप्राः अखनन् तदा तु मुनिवचनं सत्यमभूत्। ततो भूगर्भाद् श्रीशान्तिनाथजिनस्य प्रतिमा निष्कासिता। एतेनापि मूर्त्तिपूजायाः प्रामाणिकता, प्राचीनता च प्रमाणीभवतीत्याकूतम्।

❋ **हिन्दी अनुवाद**—दयालु मुनिराज ने और कहा कि इस स्थल पर त्रिलोकीनाथ श्रीशान्तिनाथ प्रभु की प्रतिमा किसी अज्ञानी जीव ने पहले खोद कर भूमि में गाड़ दी थी। यदि विश्वास न हो तो तुम खोदकर देख लो। इस तरह मुनिराज से सुनकर विप्र ने जिज्ञासावश उस स्थल की खुदाई की तब मुनिराज के वचनानुसार सत्यता ज्ञात हुई। भूगर्भ से भगवान श्रीशान्तिनाथ की प्रतिमा निकाली गई। इससे भी मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता उजागर होती है, यह अभिप्राय है ॥९०॥

[९१]

☐ **मूलश्लोकः**—

बभूवादौ कश्चिज्जिनवरमतिः सम्प्रतिनृपः,
यशस्वी तेजस्वी करुणहृदयो न्यायनिपुणः।
दयारेभे चित्ते शिरसि यमिनां वन्दनमलं,
श्रुतौ श्रद्धा धर्मे भुवनतिलको दातृषु वरः ॥ ९१ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–पुरा कश्चित् सम्प्रति नामकः श्रीजिनचरणकमल-निबद्धादरो महाराजो बभूव। तस्य यशांसि, तेजांसि, दयालुता, न्यायनिष्ठा च विश्वविदिता आसीत्। तस्य चेतसि करुणा वरुणालयारिङ्गत्तरङ्गा-दभङ्गा गङ्गा, दरिद्रनारायणं प्रक्षालयन्तीव विरराज। विनतं शिरोमण्डलं मुनिवरचरणारविन्देषु, जिनं प्रति अखण्डावच्छिन्ना सतत शुद्धाः श्रद्धाश्च सततं रेजतुः। विद्या वधूपजीवनाः, विद्याचणाः वाक्चणाः विचक्षणाः अपि तस्य सम्मानं चक्रुः। स च जिनालयैः प्रतिमाभिश्च वसुन्धरां सुशोभयामास।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–प्राचीनकाल में एक सम्प्रति नामक राजा हुए थे, जिनका विशुद्ध हृदय त्रिकालदर्शी श्रीजिनेश्वरदेव के चरण-कमलों के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं भक्ति से समर्पित था। उनका यश एवं तेज विश्व-विख्यात था। उनके हृदय में दयालुता की तरंगायित अभंग गंगधार प्रवहमान थी, जिससे वे दरिद्र-दीन-दुःखियों के दुःख प्रक्षालित करते थे। उनका मस्तक मुनिचरणारविन्दों में सदैव विनत रहता तथा श्रीजिनेश्वर-पूजा के प्रति उनकी शुद्ध श्रद्धा थी। विद्वान् भी उनका आदर-बहुमान करते थे। उन्होंने अनेक जिनालयों एवं

प्रभु-प्रतिमाओं से पृथ्वी को समुल्लसित एवं प्रोद्भासित किया ।। ९१ ।।

[९२]

☐ **मूलश्लोकः–**

जिनानां सच्चैत्यैः सुभगतरबिम्बैर्नवनवैः,
मुनीनां सद्वासैर्निगमसुलभैश्चोपकरणैः ।
सदा दीनोद्धारैर्दलितदुरितैराद्रितबुधैः,
अलङ्चक्रे भूमिं निगदितवरैर्भूषणमयैः ।। ९२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः–**प्रातःस्मरणीयानां त्रिकाल-वन्दनीयानां श्रीजिनेश्वराणां मन्दिरैः, उपाश्रयैः, साधूपचितोपकरणैः दीनोद्धारैर्दलितजनसहायताभिः सम्प्रतिनृपः तथा वसुन्धरामलञ्चकार यथा रणद्भिर्नूपुरैश्चरणशोभा भवति ।

❀ **हिन्दी अनुवाद–**प्रातःस्मरणीय त्रिकालवन्दनीय त्रिकालदर्शी सच्चिदानन्द स्वरूपी भगवान श्रीजिनेश्वरदेव के नव्य भव्य मन्दिरों, साधूपयोगी धर्मक्रिया भवनों अर्थात् उपाश्रयों, साधूपयोगी साधनों तथा दीन-हीन-दलितजनों की सहायता आदि श्रेयस्कर कार्य-कलापों से इस परम पावन भारत-वसुन्धरा को सम्प्रति नामक भूपति-राजा ने ठीक उसी प्रकार अलंकृत कर दिया, जिस प्रकार मधुर

ध्वनि करने वाले घुंघरुओं से सुसज्जित पायल से चरण-कमल की शोभा होती है ।। ६२ ।।

[६३]

□ **मूलश्लोकः—**

जिनार्चाभिर्भव्यैर्नवनवमहैः प्रीतिजनकैः ,
जिनैरुक्तो धर्मोऽप्यतिसुखमयोऽभूत्तनुभृताम् ।
न कोऽप्यासीद् ग्रामं त्रिभुवनगुरोर्यत्र न गृहं ,
सुधर्मोक्तिः क्वापि व्यभिचरति नैवेहभुवने ।। ६३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—स्वनामधन्यस्य सम्प्रतिनृपस्य काले श्रीजिनेश्वरदेवस्यानेकप्रकारिणी पूजा प्रचलिता आसीत् । जनसाधारणैर्द्विगुणितोत्साहैरानन्दैश्च श्रीजैन-धर्मस्य शोभा वर्द्धिता । किं ब्रूमस्तस्मिन् समये एतादृशः कश्चिदपि ग्रामो न आसीत् यस्मिन् प्रातःस्मरणीयानां नित्यं सेवनीयानां परमलोकोपकारिणां भगवता जिने-श्वराणां मन्दिरं न स्यात् । सर्वत्र मन्दिरे-मन्दिरे पूजा, घण्टानादोऽजनि । दयाप्रधानस्य यस्य जैनधर्मस्यैकसूत्रं राज्यमासीत् ।। ६३ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—स्वनामधन्य सम्प्रति नाम के राजा के समय भगवान श्री जिनेश्वरदेव की पूजा प्रचलित

थी। जनसाधारण अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम तथा उत्साह से इसकी शोभा बढ़ाते थे। हम अधिक क्या कहें? उस समय गाँव-गाँव, ढाणी-ढाणी में श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा का प्रभाव था तथा चैत्य-मन्दिर थे। ऐसे स्थल दुर्लभ थे जहाँ जिनमन्दिर न हो? सब मन्दिरों में प्रभुपूजा, आरती आदि तथा घण्टानाद होता था। अहिंसा-दयाप्रधान धर्म श्री जैनधर्म का एकछत्र राज्य था ।। ९३ ।।

[९४]

□ **मूलश्लोकः—**

इदं किं नो सत्यं किमुत निगमेनाङ्कितमिदं,
विदग्धानां बाढं विगलितविकल्पं मतमिदम्।
प्रमाणैः सिद्धेदं त्रिभुवनगुरोर्बिम्बयजनं,
मुधा द्रुह्यन्तिस्म प्रगलितविवेका जडधियः ।। ९४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—मूर्त्ति-पूजा किं विदुषां कपोल-कल्पितं वाग्जालमेव? किमेतस्मिन् विषये आगमेषु शास्त्रेषु च स्पष्टरूपेण किमपि नैव लिखितम्? अथवा असत्यमेतन्मोहविजृम्भितम्। अहन्तु स्वीकरोमि यत् प्रमाणैः सिद्धम्, तत् सर्वथा आदरास्पदम्। कथमपि केनापि विदुषा तस्य विरोधो न कर्त्तव्यम्। त्रिकाल-

दर्शिनां त्रिलोकीनाथानां मूर्त्तिपूजा विविधैः प्रमाणैः संसिद्धा। दूरदर्शिभिः श्रुतकेवलिगणधरैः विद्वद्भिश्च सम्यक्तयाऽस्मिन् विषये प्रतिपादितं सत्यापितञ्च देव-यजनम्। अविवेकिनो मूढा व्यर्थमेव विरोधयन्ति ॥ ९४ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—क्या मूर्त्तिपूजा केवल विद्वानों की कपोलकल्पित कथावार्त्ता है? क्या आगमों एवं शास्त्रों में स्पष्ट प्रमाण नहीं हैं? क्या मूर्त्तिपूजा पूर्णतः असत्य है? मैं तो यह स्वीकार करता हूँ कि देवपूजन प्रमाणों से सिद्ध तथा आदरास्पद है। इसमें तो किसी भी विद्वान् को विरोध नहीं करना चाहिए। त्रिकालदर्शी त्रिलोकीनाथ की मूर्त्तिपूजा अनेक प्रमाणों से सिद्ध है। श्रुतकेवली श्री गणधरादि ने भी सम्यक् प्रकार से देवपूजा को सत्यापित एवं प्रमाणित किया है। अविवेकीजन व्यर्थ में ही विरोध करते हैं ॥ ९४ ॥

[९५]

☐ **मूलश्लोकः—**

प्रमाराशिः कोशो निगममतसच्छब्दचयनाद्,
प्रमाणं सिद्धान्तस्तदनुगमनात् सोऽपि च तथा।
महाशास्त्रं भूयो विगलितमिदं तत्त्वरुचिभिः,
प्रमाणं शास्त्रं ते जगति सततं सत्यभरितम् ॥ ९५ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—निगमानां आगमानां शास्त्राणाञ्च साधुशब्द-चयनात् शब्दकोशशास्त्रमपि प्रमाकरणं प्रमाणमस्ति। प्रमाणं तावत् सिद्धः अन्तःनिर्णयोऽस्येति सिद्धान्तः तस्य सिद्धान्तस्य अनुगमनात् कोशोऽपि आगमादिवत् प्रामाण्यमधिगच्छति। तत्त्वजिज्ञासया संरचितं शब्दकोशशास्त्रमागमादीनां शब्दापेक्षितत्वात् प्रामाण्यमुपैति। शब्दशास्त्रत्वाच्च प्रमाणम्। यतो हि संसारे 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ' इति शास्त्रवचनात् कार्येऽकार्ये च व्यवस्थापकम्। शक्तिग्रहेऽपि 'शक्तिग्रहोपमानात् कोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्चेति कथितम् ॥ ९५ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—निगम, आगम एवं शास्त्रों के सुष्ठु परिनिष्ठित शब्दों का संचय करने के कारण कोश-शास्त्र पूर्णतः प्रामाणिक एवं प्रमाकरण प्रमाण है। कोश में मूर्त्ति के अनेक नाम=पर्याय हैं। प्रमाण, सिद्धान्त को कहते हैं। आगमशास्त्र आप्त कथित होने के कारण स्वयं प्रमाण हैं तथा उनके शब्दों का संचय करने वाला कोश भी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की दुविधा होने पर शास्त्र ही प्रमाण है। इसलिए शास्त्रसम्मत ही कार्य करना चाहिए। शक्तिग्रह के विषय में भी कोश

की प्रामाणिकता सिद्ध है—"**शक्तिग्रहो व्याकरणोपमानात्, कोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च**" ।। ६५ ।।

[६६]

□ **मूलश्लोकः—**

इमे कोशाः सर्वे विमलमतिभिर्विश्वमहितैः,
कृतान्ताब्धेः शब्दान् कथमपि समादाय रचिताः ।
पदं चैकैकं यत् तदपि वरनानार्थजनकं,
हरौ विष्णौ सूर्ये हरिरितिकपीन्द्रे सुरपतौ ।। ६६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—इमे लोकप्रसिद्धाः शब्दकोशाः सर्वेऽपि विशुद्धबुद्धिभिर्लोकप्रसिद्धैः शास्त्रज्ञैः साधुशब्दान्वेषिभिः आगमशास्त्रादिसागरेभ्यः चयनिताः । एकैकस्यापि शब्दस्य नानार्थकता च संदर्शिता यथा–'हरिः' इति शब्दे (पदे) विष्णु-सूर्य-कपि-सर्प-देवेन्द्रादिवाचकता प्रमाणिता । नानार्थवाचकत्वं शब्दशास्त्रैः कोशैः स्वयमेव न प्रकल्पितमपि तु आगमशास्त्रेषु तत् तद् रूपेण तत् तच्छब्दप्रयुक्तत्वाच्च प्रतिपादितम् ।। ६६ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—विशुद्ध बुद्धिजीवियों तथा शास्त्रज्ञ-मनीषियों ने इन लोकप्रसिद्ध शब्दकोशों की रचना की है । साधु-शब्दों की जिज्ञासा से उन शास्त्रज्ञों ने विविध

आगम शास्त्रों का परिशीलन-अनुशीलन करके शब्दरत्नों को आगमशास्त्ररूपी महासागरों से चुना है। इस शब्द-कोश शास्त्र में एक ही पद की नानार्थकता को भी महा-कौशल के साथ प्रदर्शित किया है। जैसे–'हरि' नामक पद में विष्णु-सूर्य-बन्दर-साँप-इन्द्र आदि की वाचकता है। ये नानार्थकता स्वयं कोशकारों ने कल्पित नहीं की है, किन्तु इसका आधार तत् तत् प्रामाणिक आगम एवं शास्त्रों के प्रयोग हैं ।। ९६ ।।

[९७]

☐ **मूलश्लोकः–**

तथा पूजाऽप्यर्हा अपचितिसपर्ये च यजनं,
उपास्येवाऽभ्यर्चा यजिरिति तथेष्टिर्निगदिता।
परे नो वर्तन्ते कति च गणयेद् तान् बुधवरः,
विना पूजां नैति कथमिह चितास्ते कविवरैः ।। ९७ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यथा 'हरि'रित्यादयो वर्णिता-स्तथैव 'पूजा' शब्दस्यापि अनेकपर्यायवाचिनो निर्दिष्टाः सन्ति। पूजा, अर्हा, अपचितिः, सपर्याः-यजनम्, उपास्या, उपासना, अर्चना, अभ्यर्चा, यजिः, इष्टिः इत्यादयः। अन्येऽपि चैवमेव वर्त्तन्ते पर्यायशब्दाः केषां केषाञ्च गणना कर्त्तव्या–स्थालीपुलाकन्यायेनैतदेव पर्याप्तम्। विचार-

यन्तु भवन्तो यत् देवपूजापद्धतिमन्तरा कथमेषां पूजापर्यायवाचिनां शब्दानां प्रयोगाः कविवरैराप्तैश्च कृताः, कोशकारैश्च संचिताः ? एतेन सिद्धयति यत् **देवपूजा** अतीव प्राचीना, प्रामाणिकी चेति ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–जिस प्रकार 'हरि' इत्यादि शब्दों का उपाख्यान है, ठीक उसी प्रकार 'पूजा' शब्द के भी अनेक पर्याय शब्दों का उल्लेख कोश में प्राप्त है । जिन्हें यथार्थ वक्ताओं, मनीषियों एवं कवियों ने अपनी-अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है । पूजा शब्द के पर्यायवाची के सन्दर्भ में–पूजा, अर्हा, अपचिति, सपर्या, यजन, उपास्या, उपासना, अर्चना, अभ्यर्चा, यजि, इष्टि इत्यादि शब्दों का बहुशः उपाख्यान है । अन्य भी हैं–इनका यह निर्देश स्थालीपुलाक न्याय से किया गया है । आप स्वयं विचार करें कि देवपूजा के बिना पूजा के अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग आप्त वक्ताओं, कवियों एवं मनीषियों ने कैसे किया ? अतः यह स्वयंसिद्ध है कि देवपूजा प्राचीन एवं शास्त्रसम्मत है ।। ९७ ।।

□ **मूलश्लोकः–**

अभिन्नौ शब्दार्थौ सततमिह चोचुर्बुधवराः,
जपन् वीरं वीरं सुहरि-हर-रामानपि जनः।
भवं भीत्वा पीत्वा भवभयहरां केवलसुधां,
द्रुतं मोक्षेऽद्वैतं सुखमनुभवत्येव सततम् ॥ ९८ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–शब्दशास्त्रपारावारीणाः धुरीणा विद्वांसः कथयन्ति यत् शब्दार्थयोरभेदसम्बन्धः। शब्दात् अर्थः पृथक् वा भवितुमर्हति। श्रीकालिदासेन कविना कथितं–**'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'** हिन्द्यामपि श्रीतुलसीदासेनापि प्रोक्तम्–'गिरा अर्थ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।' इति सौरस्यं जानन्तो भक्ता स्वेष्टदेवं तन्नाम वीर-वीरेति, हरि-हरेति, राम-रामेति जपन्तो संसारभयनाशिनीं कैवल्यज्ञानामृतं पीत्वा अखण्डं मोक्षसुखं सुतरामनुभवन्ति-इति सर्वैः विदितचरम् ॥ ९८ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–पद-वाक्यपारावारीण मर्मज्ञ विद्वान् कहते हैं कि शब्द तथा अर्थ में अभेद सम्बन्ध है। शब्द से अर्थ को पृथक् नहीं किया जा सकता है। श्री कालिदास कवि ने अपने रघुवंश काव्य के प्रथम श्लोक में मंगलाचरण करते हुए 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ=

शब्द और अर्थ की भाँति सदा मिले हुए कहकर तथा श्री तुलसीदास ने 'गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न' कहकर उक्त शब्दार्थ की अभिन्नता को प्रमाणित किया है। इस सौरस्य को जानते हुए भक्त-गण अपने-अपने आराध्यदेव के नाम का स्मरण, जप करते हुए केवलज्ञानरूपी सुधा अमृत का पान करके सदा-सदा के लिए संसारभीति से मुक्ति पाकर अखण्ड मोक्ष सुख का आनन्द लेते हैं ॥ ९८ ॥

[९९]

☐ **मूलश्लोकः–**

जिनेन्द्राणां पूजामिह नु विदधाना नरवराः ,
द्रुतं दूरीकृत्वा कटुफलकरं कर्मनिचयम् ।
वरं यत् कैवल्यं त्रिभुवनविकाशं शिवमयं ,
क्षणाल्लब्ध्वा मुक्तिं ध्रुवमुपगता यास्यति परः ॥ ९९ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यथा श्रीजिनेश्वर-नामस्मरणेन जपेन वा कैवल्यलाभस्तथैव विश्ववन्द्यानां श्रीमज्जिनेश्वर-देवानां प्रतिमापूजनमपि फलप्रदमिति रहस्यं विदन्तो भक्ताः श्रीजिनप्रतिमार्चनं-पूजनं कुर्वाणः कटु-कर्कश-कर्म-कालुष्यं दूरीकृत्वा विमलया भक्त्या, जया च परमं प्रकाशं जगद्

विकाशं शिवङ्करं केवलज्ञानं प्राप्य क्षणात् मुक्तिश्रियं प्राप्ताः, प्राप्स्यन्ति च नात्र संशीतिलेशोऽपि ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–जिस प्रकार सर्वज्ञ श्रीजिनेश्वर के नामस्मरण, संकीर्तन, जपादिक से सांसारिक कष्टों से दूर केवलज्ञान के सुखद परम पवित्र प्रकाश को भक्तगण प्राप्त करते हैं; ठीक उसी प्रकार से वे जिनमूर्त्ति-पूजा के रहस्य को जानकर के जिनभक्ति, पूजा-अर्चना में मग्नलीन होकर भी सहज तथा सरलतया केवलज्ञान को प्राप्त कर प्राचीन काल में मोक्षगामी हुए हैं, तथा सम्प्रति भी महाविदेहक्षेत्र से मोक्षगामी होते हैं एवं भविष्य में श्रीजिनमूर्त्तिपूजा पद्धति का आश्रय लेकर मुक्तिलक्ष्मी का वरण करते रहेंगे ।। ९९ ।।

[१००]

☐ **मूलश्लोकः**–

अतो भव्या लोका मरणसमये वीक्ष्य स्वपितुः ,
तथा मातुर्भ्रातुः सततमुपकर्तुस्तनुभृतः ।
विहायान्यत् सर्वं रुतरुदितमावर्ण्यमखिलं ,
वदन्तश्चार्हन्तं शिवसुखमनन्तं विदधते ।। १०० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–धर्मनिरताः जनाः जानन्ति यत्

असारेऽस्मिन् संसारे सर्वं खलु मोहकलितं प्रभोः पूजां विहाय अतएव सततं प्रभु-प्रतिमानं पूजयन्तः, जपन्तो वा प्रभोर्नामानि कालं यापयन्तो लोकव्यवहारं तन्वानाः किन्तु मृत्युसमये ह्यु पागते मातरं पितरं भ्रातरं तथान्यं लोकपद्धतिं विहाय स्वेष्टदेवं प्रभुं अर्हन्तं ध्यायन्तः पूजयन्तः स्मरन्तो जपन्तो वा परमपदं परमसुखं मोक्षं लभन्ते। स्वपरिजनस्य मातुः पितुः भ्रातुर्वा मृत्युसमीपे समागते सत्यपि ते एवमेवार्हन्नामानि श्रावयन्तः परमसुखं तन्वन्ति।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—धार्मिक लोग भली-भाँति जानते हैं कि असार संसार में प्रभु-पूजा को छोड़कर सब मोहजनित है। अतएव वे प्रभुपूजा प्रभुनाम संकीर्तन जप आदि करते हुए लोक-व्यवहार का आचरण करते हैं, किन्तु मृत्यु के सन्निकट आने पर वे लोकपद्धति, जो मात्र मोहविजृम्भित है, उसे छोड़कर सदैव अपने आराध्यदेव श्रीअरिहन्त भगवान की पूजा, स्मरण में लीन होकर परम सुख मोक्ष को प्राप्त करते हैं। अपने गृहजन तथा परिजन की मृत्यु समीप आने पर भी वे प्रभुपूजा, स्मरण, स्तोत्रपाठ आदि सुनाकर उसे परम सुख पहुँचाते हैं॥ १०० ॥

□ **मूलश्लोकः–**

स पूजा स्याल्लोकेऽप्यमरपतिपूज्यस्य सुगुरोः,
शतं वा लक्षं वा विरचयतु बिम्बं शिवमयम् ।
क्रियाकाण्डं सर्वं द्रुतमिह विनश्यत्यनुदिनम्,
कृतं सर्वं बिम्बं विफलमिह स्याच्चित्रपटवत् ।। १०१ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–देवराजैरादृता पूजिता चेयं श्रीजिनमूर्त्तिपूजापद्धतिर्यदि काल्पनिकी, असत्यं वा स्यात् तदा तु अस्याः समूलोच्छेदः स्यात् । गीताकारेणापि कथितम्–'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' । अर्थात्–असतः सत्ता न भवति, यस्यात्यन्ताभावः स्यात् तस्य भावात्मकता (सत्ता) कालत्रितयेऽपि न सम्भवा । एषा श्रीजिनमूर्त्तिपूजा प्राचीनकाले आसीत्, अधुना वर्त्तते तथा भविष्ये भविष्यति । नो चेत् शतानि, लक्षाणि च जिनबिम्बानि शिवङ्कराणि कर्त्तव्यानि-इति शास्त्रकारैः कथमुक्तम् । पूजापद्धति-प्रचारकं क्रियाकाण्डशास्त्रमपि असत्यायां श्रीजिनमूर्त्तिपूजायां सत्यामनुपदं विनश्येत् । एवं चेत् सर्वापि मूर्त्तिसंरचना वृथा स्यात् ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–देवराज-इन्द्र आदि के द्वारा सम्मानित एवं पूजित यह श्रीजिनमूर्त्तिपूजापद्धति यदि

काल्पनिक अथवा असत्य हो तो इसका समूल विनाश हो जाता। गीता में भी कहा है तथा श्रीजैन सिद्धान्त की भी इसमें स्पष्ट स्वीकृति है कि—असत् पदार्थ की सत्ता नहीं होती, तथा जिसकी सत्ता होती है उसका त्रिकाल में अभाव नहीं होता। मूर्त्तिपूजा प्राचीन काल में थी, सम्प्रति वर्तमानकाल में है तथा भविष्यत् काल में भी रहेगी। अतः सत्पदार्थ है। यदि ऐसा न हो तो शास्त्रकारों की यह घोषणा कि सैकड़ों, लाखों जिनबिम्ब बनाओ तथा पूजो तथा ये क्रियाकाण्ड ग्रन्थ सब व्यर्थ हो जाते और समस्त मूर्त्ति-रचना ही व्यर्थ हो जाती ॥ १०१ ॥

[१०२]

□ **मूलश्लोकः—**

वयं ब्रूमः किं किं पुनरिह तु तत् पूजनफलं,
पुरा श्रीपालोऽभूज्जनकजननी—सौख्यजनकः।
श्रिया कान्त्या बालोऽप्यमरपतिबालेन सदृशः,
रतीशं यस्याग्रे तृणलवनिभं वेत्ति मनुजः ॥ १०२ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—श्रीजिनमूर्त्तिपूजायाः विषये वयं पिष्टपेषणरूपेण किं-किं कथयामः। तस्य महिमा गरिमा च लोकविश्रुता अनन्ता, अपरा च वर्तते। सम्पूर्ण-

रूपेण कथयितुं अस्माकं शक्तिरपि नास्ति तथापि किमपि एकस्य श्रीश्रीपालचरित्रविषये कथयामः—प्राचीनकाले चम्पापुर्याः श्रीसिंहरथनृपतेः कमलप्रभाराज्ञ्याः श्रीश्रीपाल-नाम नन्दनोऽभूत् । बाल्यकाले स स्वकीयशरीरस्य कान्त्या श्रिया च देवकुमारसदृशः मन्ये यत् तं पुरं कामदेवोऽपि तृणमात्रमिवाऽसीत् ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हम श्रीजिनमूर्त्तिपूजा के विषय में 'बारम्बार क्या कहें ? उसकी महिमा एवं गरिमा अनन्त और अपरम्पार है । सम्पूर्णतया स्पष्ट करने की हमारे पास शब्द-सामर्थ्य भी नहीं है, तथापि ग्यारह लाख वर्ष पूर्व हुए श्रीश्रीपाल-मयणा के चरित्र के विषय में कुछ कहते हैं—प्राचीन काल में **चम्पा** नाम की नगरी का **सिंहरथ** नाम का राजा था । उसके **कमलप्रभा** नाम की रानी थी तथा **श्रीपाल** नाम का पुत्र था । बचपन में वह अपनी शारीरिक सुषमा से देवकुमार की तरह सुन्दर था । उसकी सुन्दरता एवं सुकुमारता से मानों कामदेव भी उसके आगे तिनके सा प्रतीत होता था ।। १०२ ।।

□ **मूलश्लोकः–**

मृदिम्ना यत् पादौ कमलमृदुतां तावजयताम् ,
करौ शुण्डादण्डौ पुरवर - कपाटोपममुरः ।
कपालश्चन्द्रार्द्धं वपुरखिलशोभातिवसनं ,
समेषां चानन्दं जनयति यथा पार्वणविधुः ।। १०३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–तस्य कोमलौ चरणौ कमलस्य कोमलताम् । हस्तौ गजशुण्डौ, वक्षस्थलं प्रधाननगरकपाटं, ललाटोऽर्द्धचन्द्रमसं सुन्दरं वपुः रतिपतिशोभां मुखञ्च पूर्णिमाचन्द्रमसमजयन् । अर्थात्–तस्य शरीरसुषमातीव-मनोहारिणी, अनुपमा चासीत् ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–उस श्रीपाल की बाल्यकालीन शारीरिक सुन्दरता एवं सुकुमारता का वर्णन करते हुए कवि ने उक्त श्लोक में आलंकारिक शैली का प्रयोग किया है तथा प्रकट किया है कि उसके शरीरावयवों के सामने सारे उपमान भी निस्सार अथवा तुच्छ से प्रतीत होते थे । उस श्रीपाल के कोमल चरण कमल की कोमलता को, हाथ हाथियों के शुण्डादण्ड को, चौड़ा सीना नगर के प्रधान फाटक की विशालता को, मस्तक अर्द्ध चन्द्रमा को, शारीरिक सौन्दर्य रतिपति कामदेव को तथा

मुखमण्डल पूर्णिमा के चन्द्रमा को, अपनी रमणीयता से निस्तेज करते थे ।। १०३ ।।

[१०४]

□ **मूलश्लोकः—**

कदाचिद् दौर्भाग्याद् भवविहितकर्मोदयवशात्,
महाकुष्ठैः रोगैर्विफलित – चिकित्स्यैरभिद्रुतः ।
प्रतीकाराः सर्वैः विफलमगमन् तस्य च रुचिः,
विधौ वामे कामे घटयति न कश्चिद् वरतरः ।। १०४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—विचित्रा कर्मणां गतिः इति पूर्वजन्मार्जितकर्मभिः दुर्भाग्यपरिलसितोऽसौ सर्वाङ्गसुन्दरः श्रीपालो गलितकुष्ठरोगैराक्रान्तो विरूपोऽभवत् । चिकित्सकानामपि सफलिताः संसिद्धाश्चोपचाराः विफलीभूता इव सञ्जाताः । तस्य शरीरसुषमा विद्रूपा विरूपाऽभवत् । सत्यमेतद् यत् पूर्वदुष्कृतकर्मोदयात् विधौ भाग्ये विपरीते च न जाने किं किमनिष्टं प्रतिपद्यते ।। १०४ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—'कर्मगति टारे न टरी'—कर्मगति विचित्र है । अतः पूर्वकर्मों के वशीभूत, दुर्भाग्य परिभासित, सर्वाङ्गसुन्दर श्रीपाल भी गलितकुष्ठरोगी

हो गया। सफल एवं सिद्ध वैद्यों तथा चिकित्सकों के सफल रहने वाले उपचार भी व्यर्थ होने लगे। उसकी शरीरकान्ति विरूप तथा क्षीण हो गयी। वस्तुतः यह ठीक ही कहा गया है कि भाग्य विपरीत होने पर न जाने क्या-क्या अनिष्ट भी घटित होता है ॥ १०४ ॥

[१०५]

☐ **मूलश्लोकः—**

प्रियोदारा हारा मृदितमदनाऽसौ च मदना,
जिने बद्धा श्रद्धा सुरभितदिगन्ताः सुचरितैः।
व्रतं यच्चाम्लाख्यं शमितभवरोगं सुविदितं,
समं पत्या भक्त्या विहितविधिना सा तु विदधे ॥ १०५ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—प्रियंवदा उदारहृदया मनोहारिणी काममानमर्दिनी भगवति श्रीजिनेश्वरदेवे बद्धा श्रद्धा शील-सदाचारैः सुरभितदिशा **मदना-मयणासुन्दरी** नाम्नी तस्य श्रीपालस्य धर्मपत्नी आसीत्। सा अवन्तिपतिश्रीप्रजा-पालभूपस्य धर्मपत्न्याः श्रीरूपसुन्दर्याः पुत्री आसीत्। सश्रद्धया भक्त्या पत्या सह तया भवरोग-शोकसंतापनाशकं विश्वविदितं श्रीसिद्धचक्राराधनं आयम्बिलाख्यतपसा विधिपूर्वकं नवदिनपर्यन्तं कृतम्।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–उस श्रीपाल (उम्बरराणा) की प्रियवादिनी, उदारहृदय वाली, मनोहारिणी, कामदेव के अभिमान को भी मर्दन करने वाली, भगवान श्रीजिनेश्वर देव के चरणारविन्दों में बद्ध श्रद्धा वाली सुशीला **'मदना-मयणासुन्दरी'** नामकी धर्मपत्नी थी। उसने श्रद्धा, विश्वास एवं भक्ति से सांसारिक आवागमन, रोग, शोक, सन्ताप आदि का विनाश करने वाला विश्वविदित श्रीसिद्धचक्रभगवान का नौ दिन का विधिपूर्वक आराधन अपने पति के साथ प्रारम्भ किया ॥ १०५ ॥

[१०६]

☐ **मूलश्लोकः**–

नवाह्नैः पूजाद्यैर्विहितविधिना पूर्त्तिमगमत् ,
व्रतान्ते सद्भक्त्या ह्युपचितसपर्यायकुसुमैः ।
वरैर्माल्यैर्गन्धैः सुरभितदिगन्तैः फलभरैः ,
सुधासारैर्हृद्यैर्मृदुलबहुभि - र्मोदक - चयैः ॥ १०६ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–आयम्बिलं नाम तपः नवसु दिवसेषु सम्पन्नतामगमत्। तदेवं नाम सम्प्रति **'नवपदायम्बिलम्'** इति नाम्ना प्रतिवर्षं द्विवारं भावुकाः तपोधनाश्च वितन्वन्ति। व्रतस्य सम्पन्नतायां सत्यां श्रद्धया भक्त्या अनुपम-सुरभित-सुमनैः धूप-दीपैः सौरभसमन्वितै-

नैवेद्यैर्ऋतुफलादि - पुरस्कृतैः संशोधनैर्निर्मल - तीर्थोदक-मिश्रित - जलै - र्भगवतः श्रीशान्तिनाथस्य शान्तिस्नात्र-पूजामकुरुताम् । पूजन - सामग्री - सुगन्धिभिर्दिशोऽपि सुरभिता बभूवुः ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—नौ दिनों की सतत आराधना तथा तपस्या के पश्चात् वह तपोऽनुष्ठान सम्पन्न हुआ । वही व्रत सम्प्रति **'श्री नवपद ओली'** के रूप में प्रतिवर्ष दो बार तपस्वीजनों के द्वारा आराधित होता है । व्रत के सम्पन्न होने पर उन्होंने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अनुपम सुगन्धित धूप-दीप-फल-नैवेद्य एवं पवित्र जल से श्रीशान्तिनाथ भगवान की आराधना में **'शान्तिस्नात्र'** आदि पूजा-पूजन किया । पूजन - सामग्री की सुरभि से सारी दिशायें सुरभित हो गयीं ।। १०६ ।।

[१०७]

☐ **मूलश्लोकः—**

तया तेनेऽभ्यर्चा शिवसुखनिधेः शान्तिसुगुरोः,
महार्हैः सद्द्रव्यैर्ललितवरनीरैश्च कलशैः ।
अखण्डैः सद्दीपैः रजतसमशुभ्राक्षतभरैः,
अभूत् स्नात्रं दात्रं भवभयलवित्रं सुविधिना ।। १०७ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–तच्च शान्तिस्नात्रं पवित्रजलैः सद्द्रव्यैः सुदीपैः बहुमूल्यद्रव्यैः रजतकलशैः, अखण्डाक्षतैः परमश्रद्धया अदम्योत्साहैरुत्कृष्टनिष्ठाभिः सञ्जातम् । शान्त्या निर्विघ्नरीत्या प्रीत्या च सम्पद्यमानं कार्यमखिल-सुखायाभीष्टलाभाय च कल्पते । संसारे जन्म-मरण-शोक-संताप-लवित्रं दात्रमिव भगवतः श्रीशान्तिनाथस्य स्नात्रं दिदीपे ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–वह शान्तिस्नात्र पवित्रजल, सद्द्रव्य, बहुमूल्य द्रव्य, रजतकलश, अखण्ड अक्षत इत्यादि अदम्य उत्साह एवं उत्कृष्ट निष्ठा एवं परम श्रद्धा से सम्पन्न हुआ । निर्विघ्न शान्त रीति एवं प्रीति से सम्पन्न होने वाला कार्य निश्चित रूप से मनोरथकारी एवं उत्कृष्ट लाभकारी सिद्ध होता है । जन्म-मरण-भय के उच्छेद के लिए दात्र (दराती) के समान वह पवित्र स्नात्र सम्पादित हुआ । उसके सर्वत्र अच्छे परिणाम उजागर हुए ।। १०७ ।।

[१०८]

☐ **मूलश्लोकः**–

तदीयं यन्नीरं मृदितभयभीरं मदहरं,
गृहीतं तत्सर्वं निहितमपि सौवर्णकलशे ।
सुधा निःस्यन्देनाप्यधिकसुखदेनास्य पयसा,
तया पत्युर्गात्रं व्रणितगलितं रोगकलितम् ।। १०८ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–प्रभोः श्रीशान्तिनाथस्य स्नात्रस्य यत् परमपावनं भवभीतिहरं प्रक्षालितजलमासीत् । तत्तु मदना सौवर्णकलशे गृहीतवती । अमृतनिर्झरादपि अधिक-सुखप्रदेन तेन स्नात्रजलेन सा पत्युः कुष्ठरोगेण व्रणित-सकलमपि शरीरं प्रक्षालितवती । स्नात्रजलावसिञ्चनेन महदाश्चर्यकरं वृत्तान्तं सञ्जातम् ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–लोकशान्तिप्रदाता श्रीशान्तिनाथ भगवान् के स्नात्र महापूजन-महोत्सव में प्रभु के प्रक्षाल के जल को श्रीसिद्धचक्र की सुन्दर आराधना करने वाली धर्मपरायणा मदना-मयणासुन्दरी ने परम श्रद्धा के साथ सुवर्णकलश में ग्रहण किया । वह प्रक्षाल का जल अमृत के निर्झर जल से भी अधिक सुखप्रद था । पूजोपरान्त उसने उस पावन-जल को अपने पति श्रीपाल (उम्बरराणा) के गलित कुष्ठ पर सर्वत्र अवलेपित किया । अवलेपित करते ही एक महान् आश्चर्यकारी घटना हुई । वस्तुतः देवपूजा से क्या-क्या आश्चर्य सम्भव नहीं है ? ॥१०८॥

[१०९]

☐ **मूलश्लोकः**–

दिदीदे तत् कान्ती रतिपतिद्युतेश्चापि जयिनी ,
गिराऽवाच्यं सौख्यं पुनरविषयं चापि मनसः ।
जयारावश्चेदृक् समजनि दिगन्तं बधिरयन् ,
अहो जैनो धर्मो जयति फलदो देवतरुवत् ॥ १०९ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–चमत्कारकरं तद् वृत्तान्तश्च एतदेव यत् तस्याः पत्युः शरीरं यच्च बहुविधं गलितकुष्ठरोगेण व्रणितं पूतियुतमासीत् । तदेवं भास्वर-सौवर्णकान्तिमधिजगे । तत् सौख्यं मनोवचोऽतिगं स्वरूपं प्राप्नोत् । इति वृत्तान्तचमत्कृता जैनाः, जैनेतराश्च श्रीजैनधर्मस्य जयारावमकुर्वन् । तेन जयारावेण च सर्वा अपि दिशाः गुञ्जिताः कूजिताः पूजिताः इति सञ्जाताः । अहो ! सत्यमेतत् जैनधर्मः कल्पवृक्ष इति मनोभिलषितं सपदि पूजयति । अतएव सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्त्तते ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–चमत्कार यह हुआ कि जैसे-जैसे मयणासुन्दरी ने स्नात्रजल अपने पति श्रीपाल के गलित दुर्गन्धियुक्त कुष्ठ-रोगाकीर्ण शरीरावयवों पर लगाया वैसे-वैसे ही वह कुष्ठ-प्रकोप शान्त हो गया । फलस्वरूप उसका शरीर भी सुवर्ण कान्ति के समान देदीप्यमान होने लगा । ऐसे चमत्कारपूर्ण वृत्तान्त को देखकर जैन एवं जैनेतर भी श्रीजैनधर्म की जय बोलने लगे । इस जय-ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था मानों दिशायें बहरी हो जायेंगी । वस्तुतः अहिंसा-संयम-तपरूप जैनधर्म कल्पवृक्ष के समान सभी मनोरथों को पूर्ण करता है । अतएव सर्वोत्कृष्ट है ।। १०९ ।।

□ **मूलश्लोकः-**

परे लक्षा आसन् पुरपरिसरे चास्य सुहृदः,
परा भूता सर्वे विकटविषमानेन च रुजा।
अमीषां संसर्गादयमपि च कुष्ठी समजनी,
असिञ्चत् सा सर्वान् विमलपयसाऽनेन विधिना ॥ ११० ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः-**नगरात् बहिः श्रीपालस्य विपद्-सहायाः अनेकानि मित्राणि आसन् ये कुष्ठरोगेण समाक्रान्ता आसन्। वस्तुतः तेषां संसर्गेण श्रीपालोऽपि कुष्ठिः सञ्जातः। करुणावरुणालया सा मयणासुन्दरी तेषामपि रोगोपशमनार्थं तत्र गत्वा पतिविपद्सहायान् अपि निषेचितवती, एवञ्च स्नात्रजलप्रभावेण प्रतापेन च तेऽपि स्वस्थाः सञ्जाताः। अहो! मूर्त्तिप्रक्षालित-जलमहिमा यदा एतादृशी तर्हि मनसा वचसा विविधपूजया च सा श्रीजिनेश्वरस्य प्रतिमा सदैव पूज्या।

❀ **हिन्दी अनुवाद-**नगर के बाहर श्रीपाल की विपत्ति में सहायता करने वाले अनेक मित्र भी कुष्ठ रोग से पीड़ित थे। अतएव करुणामूर्त्ति श्रीमती मयणासुन्दरी ने उसी अवशिष्ट स्नात्रजल से वहाँ जाकर उनके शरीरों पर भी अवलेप किया तथा वे भी सुन्दर आकृति वाले

होकर रोगमुक्त हुए। जिसका ऐसा अलौकिक प्रभाव है, हम वैसी श्रीजिनेश्वरदेव की मूर्त्ति-प्रतिमा का पूजन क्यों न करें! यह तो मन, वचन और काया से सर्वदा भक्ति-पूर्वक वन्दनीय एवं पूजनीय है ।। ११० ।।

[१११]

□ **मूलश्लोकः—**

विनिर्मुक्ता रोगैर्गरुडभयतो नागकुलवत्,
विरेजुः सद्देहाः ग्रहणरहितो भानुविधुवत्।
महत्त्वं पूजायाः स्नपनपयसोरप्यभिमतं,
इदं सत्यं किं नो कथयसिरिवाले सुचरिते ।। १११ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः—**परमपावन - शान्तिस्नात्रशुद्धोदक-भीताः रोगाः, गरुडाद् भीताः सर्पा इव पलायिताः। रोगनिर्मुक्ताः जनाः ग्रहणमुक्तं भास्करमिव विरेजुः। एवं तावत् प्रभुपूजनमहत्त्वं विश्वविदितम् तर्हि कथङ्कारं विद्विषन्ति भवन्तो मूर्त्तिपूजा - विरोधिनः ? किमेतत् 'श्रीपालचरितं' पारमार्थिकं न ?।

❀ **हिन्दी अनुवाद—**परमपवित्र श्रीशान्तिनाथ भगवान के समवसरण में आराधित पूजित उस श्रीशान्तिस्नात्र-महापूजन के प्रक्षाल-जल से रोग, ठीक उसी प्रकार भया-

क्रान्त होकर पलायित हो गये जिस प्रकार गरुड़ के भय से सर्पगण भाग जाते हैं। रोग से विनिर्मुक्त सुन्दर देह वाले जन भी इस प्रकार दिखाई दिये जैसे सूर्य और चन्द्र ग्रहण-मुक्ति के पश्चात् तेजस्वी दिखाई देते हैं। जब पूजा का इतना प्रभाव एवं चमत्कार है तब आप मूर्त्ति-पूजा से अर्थात्–प्रतिमा-पूजन से विद्वेष क्यों करते हैं? क्या यह वृत्तान्त **'सिरिसिरिवाल कहा'** में अर्थात्–**'श्रीश्रीपालचरित्र'** में परमार्थतः वर्णित नहीं है? ।। १११ ।।

[११२]

☐ **मूलश्लोकः–**

महत्त्वं सन्मूर्त्ते - र्बुधवरमरालैर्निगदितं,
ततो मान्या पूज्या निखिलसुखदा मूर्त्तिरमला।
बुधा यन्मार्गेण विगतपरितापाः किल गताः,
स पन्था सर्वेषां शमसुखविकासाय कथितः ।। ११२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–अस्याः श्रीजिनमूर्त्तिपूजाविषये स्वयमरिहन्तभगवद्भिः श्रुतकेवलिश्रीगणधरैश्च पदे-पदे कथितम्। सर्वसुखप्रदायाः पूजायाः विषये कदाग्रहं विहायाङ्गीकरणमेव वरम्। अहन्तु ब्रवीमि येनान्तराय-रहितेन महापुरुषाः गतवन्तस्तेनैव मार्गेण सदा गन्तव्यम्।

स एव मार्गः सुखदः शान्तिप्रदश्च वर्त्तते। सन्मार्गेण प्रयातव्यं न तून्मार्गेण।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—श्रीजिनमूर्त्तिपूजा के सन्दर्भ में स्वयं श्रीआदिनाथ आदि जिनेश्वरदेवों एवं श्रुतकेवली गणधरभगवन्तों ने स्पष्ट रूप से अनेकशः कहा है और लिखा भी है। सर्वसुखदायिनी श्रीजिनेश्वरमूर्त्तिपूजा के प्रति दुराग्रह-कदाग्रह छोड़कर के उसी श्रद्धा, भक्ति एवं पूर्ण निष्ठा को अवश्य अपनाना चाहिए। मैं तो कहता हूँ कि—जिस निष्कण्टक, अन्तरायरहित मार्ग से सज्जन महापुरुष गये हों उसी मार्ग से चलना चाहिए। वही मार्ग सुखद एवं शान्तिप्रद होता है। वस्तुतः सन्मार्ग से चलना चाहिए, उन्मार्ग से नहीं ॥ ११२ ॥

[११३]

☐ **मूलश्लोकः**—

विकल्पं दुष्तर्कं त्यजत खलु किम्पाकफलवत्,
श्रुतौ श्रद्धां बध्वा त्रिभुवनगुरोस्तस्य वचने।
सपर्य्यां कुर्वन्तु प्रवरजिनभर्तुः प्रतिकृते,
विना श्रद्धां कश्चिन्न फलति कृतो यत्ननिकरः ॥ ११३ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—किम्पाकफलं दुःखदं भवति, अतः

एतत् कुतर्कजालं विकल्पं वा परित्यज्य स्वीकुर्वन्तु स्वीकरणीयम् । त्रिलोकमान्यानां श्रीजिनेश्वराणां वाण्येव श्रुतिरागमो वेति । तत्र च श्रद्धा विश्वासो विधेयः । एषा जिनमूर्त्तिः–जिनप्रतिमा श्रीजिनेश्वरदेवस्य प्रतिनिधिरिति स्वीकृत्य जिनभावैः पूज्यताम् । श्रद्धा-विश्वासमन्तरा संसारेऽस्मिन् कृतेऽपि भवति प्रयासे साफल्यं न लभ्यते ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–किम्पाकफल अत्यन्त ही कष्टदायी होता है । अतः यह कुतर्क जाल एवं विकल्प जाल छोड़कर स्वीकार करने योग्य इस मूर्त्तिपूजा-पद्धति को स्वीकार करो । त्रिलोकमान्य श्रीजिनेश्वर भगवान की वाणी ही श्रुति या आगम कहलाती है । उस पर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास करो । यह 'जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा' जिनेश्वरदेव की प्रतिनिधि स्वरूप है । इस भाव से इसकी पूजा करो । श्रद्धा व विश्वास के बिना इस संसार में महान् प्रयास करने पर भी सफलता प्राप्त नहीं होती है ।। ११३ ।।

[११४]

☐ **मूलश्लोकः–**

वनान्ते चोद्भूतं मृदुलकमलं कं न सुखदं ,
तदीयं सौरभ्यं प्रथयति दिगन्ते शिखिसखः ।
तथार्हत् सन्मूर्त्ते ! तव च महिमा विश्वविदितः ,
वितन्वन्ति प्रायो दिशि-दिशि सदा शुद्धमतयः ।। ११४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–वनान्तरे सरसे सरोवरे विकसितं नवलममलं कमलं कस्य कौतुकाय आनन्दानुभूतये न सम्भवति ? तदीयां सुरभिमासाद्य पवनः सुवासितः सन् तद्गुणगौरवं दिगन्ते विस्तारयति । एवमेव तत्राकारण-करुणावरुणालयस्यार्हतो महिमा सन्मूर्त्तिमहत्त्वञ्च यद्यपि विश्वविदितं तथापि सुधियः सूरीश्वराः चतुर्षु दिक्षु विस्तारयन्ति ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–वन के सरस सरोवर में विकसित नवल विमल कमल भला किसे सुन्दर नहीं लगता, किन्तु उसकी सौरभ से सुरभित वायु कमलगुणगरिमा को दिशान्तरालों में संचारित करती है । ठीक इसी प्रकार अकारण करुणावरुणालय अरिहन्तदेव की महिमा यद्यपि विश्वविदित है, तथापि अहर्निश सुधीश्वर चारों दिशाओं में अर्हत् एवं अर्हत् प्रतिमा के महत्त्व को विस्तीर्ण करते हैं ।। ११४ ।।

[११५]

☐ **मूलश्लोकः**–

सुरा यद् वाञ्छन्ति प्रणिहितधिया भोगमतुलं,
विना यत्नात्तेभ्यः प्रवितरति सर्वं सुरतरुः ।
तथार्हन्ती मूर्त्तिः शमसुखसवित्री वसुमती,
बुधा ध्यान्त्वेनाममितमहिमानं विपुलदाम् ।। ११५ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–देवाः यदपि अतुलनीयमलभ्यं वा भोगमभिलषन्ति, तत् सर्वमपि तेभ्यः कल्पवृक्षः प्रददाति। तद्वदेव आर्हन्तीव मूर्त्तिः कैवल्यसुखप्रदात्री वर्त्ततेऽतो बुधजनाः सदैवास्याः महिमानं स्मरन्तु, ध्यायन्तु, कीर्त्तयन्तु।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–देवताओं की अतुलनीय तथा अलभ्य वस्तुओं के प्रति समुद्भूत अभिलाषाओं एवं आकाङ्क्षाओं को देवतरु कल्पवृक्ष सदैव सम्पूरित करता है। एवमेव अर्हन्मूर्त्ति स्फूर्त्तिमयी है तथा कैवल्य-सुख प्रदात्री है। अतएव सज्जन विवेकी पुरुषों को सदैव अर्हन्मूर्त्ति-महिमा का स्मरण, ध्यान एवं कीर्त्तन करना चाहिए ॥ ११५ ॥

[११६]

मूलश्लोकः–

भवत्या माहात्म्यं बुधवरमरालैरधिगतं,
विमुच्यान्यत् सर्वं प्रियसुतकलत्रादि-विभवम्।
प्रभाते मध्याह्ने परिणतदिनान्ते नदतटे,
सरस्तीरे पुण्ये स्तवमनुजपद्भिश्च मुनिभिः ॥ ११६ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–अर्हन्मूर्त्या माहात्म्यं क्षीरनीर-विवेकिभिर्बुधवरैः सम्यग्तया परिचितमस्ति। अतएव

मुनिवरैः, साधकैश्च प्रियसुतकलत्रादिविभवं परित्यज्य प्रभातकाले सायंकाले च सरोवरतटे नदीतटे पुण्ये स्थले संस्थापिते मन्दिरेऽस्य स्तवनादिकं क्रियते ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—श्रीअर्हन् मूर्त्ति का माहात्म्य क्षीर-नीर विवेकी विद्वान् भली भाँति जानते हैं। अतएव विद्वान् मुनीश्वर साधक सभी प्रिय पुत्र, पत्नी, विभव, धन-धान्य को विस्मृत करके या छोड़कर के भी नित्य निरन्तर प्रभात-मध्याह्न-सायं त्रिकाल ही पवित्र सरोवर नदी या अन्य प्राकृतिक रमणीय स्थान पर संस्थापित प्रासाद-मन्दिर में प्रभु के स्तुति-स्तवनादिक तथा सम्यक् आराधनादिक करते रहते हैं ।। ११६ ।।

[११७]

□ **मूलश्लोकः**—

यथा वर्षारम्भे जलपरिभृते श्यामजलदे ,
समायाते हंसाः प्रहसितदिगन्ता निजरुचा ।
विमुच्येमां भूमिं चिरपरिचितां कामजननीं ,
श्रयन्ते प्रोन्मानं सततसुभगं मानसमलम् ।। ११७ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—येन प्रकारेण वर्षारम्भे कृष्ण-वर्णमेघे जलपूर्णे समागते निजरुचिर-रुचयो हंसाः सामान्यां

भूमिं विहाय मनोहारिणीं मानससरोवरभूमिं श्रयन्ते। उक्तञ्च **'रमते न मरालदयमानसं मानसं बिना'**।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—(जिस प्रकार) वर्षाऋतु के प्रारम्भ में काले-काले जलपूर्ण बादलों के आकाशमण्डल पर छाने पर मनोहारी मानसप्रेमी हंस मान सरोवर को याद करके सामान्य भूमि को छोड़कर के **'मान सरोवर'** के लिए उड़ान भरते हैं। क्योंकि—मराल का मन मान-सरोवर के बिना प्रसन्न नहीं रहता है॥ ११७॥

[११८]

□ **मूलश्लोकः**—

तथा विद्वद्वृन्दाः परमसुखकन्दा द्विजवराः,
निशान्ते विश्रान्ते विगततिमिरान्ते दिक्मणौ।
समुद्भूते पूते सुखयति सुकान्त्या त्रिभुवने,
तदा त्वां ध्यायन्तस्तव पदमरन्दं प्रमुदिताः॥ ११८॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—मानसरमणा मराला इव विद्वान्सो द्विजवराः अन्धकारे विनष्टे प्रोद्भासिते च भास्करे भुवन-दीपिते सति अनन्यया परमया श्रद्धया भक्त्या निष्ठया परममनोयोगेन च त्वां अर्हन्मूर्त्ति पूजयन्तः सेवमानाः ध्यायन्तश्चातिशयं सुखं लभन्ते।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—मानसरोवर के प्रति सतत लालायित क्षीरनीर विवेकी हंसों की भाँति विद्वन्मण्डल भी सहसदीधिति सूर्य के समुदित, प्रोद्भासित होने पर जैसे अन्धकार की गहन चादर छिन्न-भिन्न हो जाती है, वैसे ही एकनिष्ठ परम श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास से श्रीअरिहन्त-जिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति प्रतिमा की सेवा, पूजा तथा ध्यान करते हुए अनन्त सुख-शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं ।। ११८ ।।

[११९]

□ **मूलश्लोकः**—

सदारङ्कः कङ्को नृपमनुगतस्सेवितपदः,
भवेद् भूपाकारो धनवसनधान्यैः परिकरैः ।
समाराध्यां चैनां विदितभुवनाभोगविषयाः,
सदा स्वात्मा रामा व्यपगतभया यान्ति मनुजाः ।। ११९ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—सर्वतोभावेन दीनोऽपि मनुजो यदि नृपस्य सेवायां सततं लीनो भवति तदा स निस्वप्रचत्वेन धनैः धान्यैः वसनभूषणादिभिः नृपसन्निभं भूयात् । स्वयमेव लोकविश्रुतां भगवतो मूर्त्ति समाराध्य सर्वेऽपि मनुजाः दैहिक-दैविक-भौतिक सन्तापेभ्यः सर्वथा

विमुच्यन्ते, तथा अक्षयमव्ययञ्च पदं लभन्ते। नात्र मनागपि सन्देहस्य गन्धलवोऽपि वर्त्तते।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हर प्रकार से दीन-हीन मनुष्य भी यदि सम्राट् चक्रवर्त्ती की सेवा में मग्न-लीन रहता है तो व्यवहारसिद्ध है कि प्रसन्न राजा के प्रताप से वह एक दिन राजा की भाँति सम्पन्न-सा हो जाता है। उसकी दरिद्रता काफूर हो जाती है। ठीक इसी प्रकार से विश्वविदित-प्रतापमयी श्रीअर्हन्त-जिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा की पूजा में मग्न-लीन सभी मनुष्य आधिदैविक, आधिदैहिक, आधिभौतिक दुःखों से सर्वथा मुक्त होकर परमपद-मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इस विषय में अंश-लेश मात्र भी सन्देह को स्थान नहीं है ।। ११९ ।।

[१२०]

☐ **मूलश्लोकः**—

विमुच्यान्यत् कृत्यं प्रतिपदमशान्तिप्रदमलं,
शमं सौख्यं वाञ्छन्नमितविषयादुःखितमनाः।
भजन्नर्हन् मूर्त्ति शिवसुखमयीं मुक्तिजननीं,
निराबाधं सारं शमशिवसुखं को न लभते? ।। १२० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—अशान्तिजनकं सकलं भौतिक-क्रियाकलापं त्यक्त्वा सुखं शान्ति आह्लादमभिलषन् विषयभोगविरक्तः शिवसुखमयीं मुक्तिदात्रीमर्हन्मूर्त्ति सेवमानः को नाम भक्तः परमसुखं निराबाधं सारं न प्राप्नोति ? अर्थात्—कोऽपि पुरुषः स्त्री वा यदि सर्वगुण-सम्पन्नां मोक्षदायिनीं परमसुखसौलभ्यप्रदात्रीं अर्हतः मूर्त्ति-प्रतिमां स्वैषायिकतृष्णा-विहीनः परमश्रद्धया पूजयति सेवते वा तदा शमशिवसुखं निश्चप्रचत्वेन लभते ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—भौतिक-कार्यकलापों को छोड़कर के सुख-शान्ति, विशुद्ध आह्लाद की अभिलाषा रखने वाला विषयभोगविरक्त परमकल्याणकारिणी, मुक्तिसूक्तिप्रदात्री भगवान् श्रीअरिहन्तदेव की मूर्त्ति-प्रतिमा की सेवा-पूजादि करते हुए निश्चित रूप से अखण्ड अनन्त निराबाध सारस्वरूप परमसुख को प्राप्त करता है । तात्पर्य यह है कि—वीतराग श्री अरिहन्त जिनेश्वर भगवान की चारों निक्षेपों से पूजनीक ऐसी मूर्त्ति-प्रतिमा का पूजन-भजन तथा कीर्त्तनादि सद्यःफलदायी होता है तथा संसार-सागर के समस्त क्लेश-जालों को दूर कर निरापद मुक्तिमार्ग को प्रशस्त करता है ।। १२० ।।

☐ **मूलश्लोकः—**

कदाचिद्रङ्कोऽसौ कथमपि नराधीशमनघं,
समेतस्तत्सेवामपि सविदधानो धनधिया।
स किं भूपोऽनूपोऽमितकरुणया पीडितमनाः,
समायातस्येहामिह भुवि भवां पूरयति नो ।। १२१ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः—**अत्यधिको दरिद्रोऽपि कस्यचिद् नृपस्य सेवायां धनाभिलाषयासंलग्नः सन् अनूपस्य तस्य भूपस्य कृपाकटाक्षनिपातेन तस्य दरिद्रता दूरीभवति। संसारेऽस्मिन् यदपि तस्याभीप्सितं स्यात् तत् सर्वं सपदि पूरयति। अर्थात्—परमकारुणिकोनृपः तस्य द्ररिद्रस्य सर्वां लौकिकीं आवश्यकतां झटिति पूरयति प्रसन्नःसन् तेन-संसारेऽसावपि सम्पन्नो धनाढ्यः प्रशस्यश्च भवति ।। १२१ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद—**किसी राजा की सेवा में धनार्थ तल्लीन रहते हुए भी अनूप भूप के अतिकारुण्य कृपा-कटाक्षसम्पात से किसी दरिद्र की द्ररिद्रता दूर हो जाती है, इस संसार में उसकी अभिलाषा सद्यः पूर्ण हो जाती है। अर्थात्—परम कारुणिक नृपति-राजा उस दरिद्र-गरीब की लौकिक आवश्यकता को शीघ्र पूर्ण करता है। अतएव

वह भी संसार में सम्पन्न, धनाढ्य एवं प्रशंसनीय हो जाता है ।। १२१ ।।

[१२२]

☐ **मूलश्लोकः–**

तथैवाऽस्मिल्लोके जन - मरण - सन्तापहरणीं ,
कथञ्चिद् सौभाग्याच्छ्रयति मतिमन्दोऽपि मनुजः ।
निरातङ्को रङ्को भ्रमति भुवनाभोगविषये ,
त्वदायत्तं लोके मनुजमनघं वारयति कः ? ।। १२२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः–**यथा राजा सेवया प्रसन्नः दरिद्र-दुःखदावानलं विदलयति तथैव अर्हन्मूर्त्ति जनानां मरणमेव-सन्तापः - जन्ममरणसन्तापः तस्य हरिणी तां मनुजमृत्यु-सन्तापनाशिनीं सौभाग्योदयेसति अल्पबुद्धिधनोऽपि सेवते आश्रयति वा तदा दरिद्रो मूर्खोऽपि सन्विविधदुःखदाहदहन-स्वरूपे विश्वस्मिन् आतङ्करहितो भ्रमति । निश्प्रचत्वेन-त्वदतिरिक्तः को नाम मनुष्यं पापं निवारयति ? सर्वं खलु तव सेवया भक्त्या पूजया च सम्भवति आत्यन्तिक-दुःखत्रयाभिघातः । पापान् मनुष्यमरिहन्तः निवारयितुं प्रभुः तत् प्रतिनिधिस्वरूपा प्रतिमा वा ।। १२२ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद–**जिस प्रकार राजा किसी दरिद्र

की सेवा से प्रसन्न होकर उसके भौतिक कष्टों का निवारण करता है, ठीक उसी प्रकार प्रभु की सतत पूजा, सेंवा एवं उपासनादिक से अर्हन्प्रतिमा मृत्युरूपी सन्ताप का आत्यन्तिक विनाश करती है। सौभाग्यवश मन्दबुद्धि भी यदि जन्म-मरण-सन्ताप को दूर करने वाली वीतराग श्री जिनेश्वरदेव की मूर्त्ति-प्रतिमा की सेवा करता है तो वह निश्चित रूप से निरापद एवं आतंकरहित हो जाता है। वस्तुतः मनुष्य को पाप-ताप-सन्ताप से सर्वथा मुक्त करने में समर्थ ऐसे श्रीअरिहन्त परमात्मा या तत् प्रति-निधि स्वरूपा जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा-जिनबिम्ब है ।। १२२ ।।

[१२३]

☐ **मूलश्लोकः—**

भवेद् यो पापीयान् चरणकरणाभ्यां प्रपतितः,
कथञ्चित् सद्बोधात् स्मरति जिनमूर्त्ति सुखकरीम् ।
द्रुतं पापान्मुक्तः पतितजनता पावयति वं,
लवो गाङ्गो लोकान् मुखमपि गतः पावयति च ।। १२३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः—**संसारे लिप्साभावैर्बद्धः धर्मकर्म-चरित्रैः पतितोऽपि कदाचित् सज्ज्ञानोदयाद् यदि सुखकारिणीं वीतरागश्रीजिनदेवस्यमूर्त्ति स्मरति, सेवते वा तदा स झटिति पापान् मुक्तः सन् पतितानपि जनान् पावयति ।

संसारे सर्वेजानन्त्येवयद् गङ्गाजलं विषाक्तकीटरहितं परम-पवित्रजनानां मुखमपि गतं जनान् पावयति ।। १२३ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–संसार में तृष्णा भावों से बद्ध, धर्म-कर्मचरित्रों से पतित मनुष्य भी सद्ज्ञानोदय से यदि सुखदायिनी वीतराग श्रीजिनेश्वर भगवान् की मूर्त्ति-प्रतिमा का आश्रय लेता है, उसकी पूजा करता है तो वह शीघ्र ही समस्त पापों-कलुषों से मुक्त होकर दूसरे लोगों को भी पवित्र करने में मग्न-लीन हो जाता है। सभी जानते हैं कि गङ्गा का जलबिन्दु भी लोगों के मुख में पड़ते ही उन्हें पवित्र करता है, उनकी भावनात्मक शुद्धि करता है ।। १२३ ।।

[१२४]

☐ **मूलश्लोकः**–

अहं मन्ये सम्यक् तव चरणसेवां न कृतवान्,
ततो मां संसारे विगतसुखसारे भ्रमयति ।
विषाहारो मन्त्रो वसति यदि यस्यान्तरगृहे,
वदैतत्त्वं देव ! गहनगरलं किं प्रभवति ? ।। १२४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे अरिहन्तदेव ! अहं स्वीकरोमि यत् श्रीमद्चरणारविन्दसेवां सम्यक्प्रकारेण नाकारवम् । अतएव सुखरहितेऽसारेऽस्मिन् संसारे निजकर्मजालं मां

भ्रामयति । सत्यमेतद् यद् विषापहारी मन्त्रो यस्य पार्श्वे-आत्मनि वा रमते तस्य गरलं कां हानिं तनोति ? कथमपि केनापि प्रकारेण प्रभवितुं न शक्नोति ।। १२४ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे वीतराग अरिहन्त परमात्मा ! मैं यह स्वीकार करता हूँ कि—आपकी चरण-सेवा मैंने सम्यक् प्रकार से नहीं की । अतएव सुखरहित असार संसार में मेरे कर्मजाल मुझे बारबार भ्रमित करते रहते हैं । यह सत्य है कि विषहारी मन्त्र के रहते भला विष-जहर उस व्यक्ति का क्या बिगाड़ सकता है ? अर्थात् वह विष-जहर किसी प्रकार से भी विषापहारी मन्त्रधारक को प्रभावित करने में समर्थ नहीं हो सकता है ।। १२४ ।।

[१२५]

☐ **मूलश्लोकः—**

इमे चत्वारो मे प्रवररिपवोऽवारितरयाः ,
वसन्तश्चान्तर्मे शमसुखहरन्तोऽपि सततम् ।
अहं मन्ये चार्हत् पदविमुखतायाः फलमिदं ,
समुद्भूते भानौ प्रभवति तमिस्रा कथमहो ! ।। १२५ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे अर्हन् ! क्रोध-मान-माया-लोभ-नामधारिणः शरीरस्थाः अवारितवेगाः एते चत्वारोऽपि

मे शत्रवः अन्तस्थिताः सन्तः मदीयां शान्ति सुखमपनयन्तः सततं विराजन्ते पीडयन्ति च सर्वथा । अहं मन्ये यदेतत् तव चरणविमुखतायाः एव परिणामोऽयम् । येन चतुर्भिरन्तः स्थितैः शत्रुभिर्हन्यते । अन्यथा समुदिते सूर्ये यथारात्रिर्न प्रभवति तथैव मयि तव चरणसेवापरायणे सति एते रिपवः कदापि प्रत्यक्षं शरीरे वा स्थातुं न शक्नुवन्ति ।। १२५ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे अर्हन् ! क्रोध-मान-माया-लोभ नामक चारों कषायरूपी आभ्यन्तरिक शत्रु सदैव मेरा सुख-चैन छीन रहे हैं, मुझे पीड़ा एवं सन्ताप पहुँचा रहे हैं तथा वे मेरे शरीर में ही निवास कर रहे हैं । हे प्रभो ! मैं तो यह मानता हूँ कि—आपके चरणों की सेवा-भक्ति से विमुख रहने का यह प्रतिफल है । अन्यथा सहस्रदीधिति सूर्य के उदित हो जाने पर अन्धकारमयी रजनी कैसे टिक सकती है ? ।। १२५ ।।

[१२६]

☐ **मूलश्लोकः—**

सुखाहः सन्तापो विषमपरिपाकोऽप्रतिरथः,
भवभ्रान्ते यन्त्रे तिलमिव सदा पीलयति माम् ।
अहं शङ्के चार्हन् ! तव पदविरागादिदमभूत्,
गदाघाते पादे स्मृतिपथगते पीडयति कः ।। १२६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे देवाधिदेव ! सुखापहारी दुःखदायी अनियन्त्रितः मां भव भ्रमणरूपके यन्त्रं तिलमिव पीडयति । अहं शङ्के यत् हे प्रभो ! एतद् सर्वं तव चरणविरक्तः समुद्भूतम् । सदौषधे स्मृतिपथगते को नाम पीडयितुं सक्षमो भवति ? न कोऽपीत्याशयः ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे देवाधिदेव ! सुखापहारी, दुःखदायी, अवारित शक्तिमान् यह सन्ताप संसाररूपी चलते यन्त्र में मुझे तिल के समान सदैव पीस रहा है, पीड़ा प्रदान कर रहा है । मैं ऐसा मानता हूँ कि यह आपके चरणकमलों की सेवा-पूजा के प्रति अनास्था, प्रमाद भाव आदि के कारण ही प्रस्तुत हुआ है । अन्यथा सदौषध सेवन-परायण रहने पर भला कोई रोग कैसे बच सकता है ? ॥ १२६ ॥

[१२७]

□ **मूलश्लोकः**–

जगत्यस्मिन्मूढाः कनकललनाच्छादितधिया ,
धनार्थं गाहन्ते जलधिजलयानेन विषयान् ।
असारं वित्तानां कथमपि मतौ नो पदमगात् ,
तदेतद् आर्हन्त्या गुणविमुखताया विलसितम् ॥ १२७ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे देवेश ! अस्मिन् संसारे कञ्चन-कामिनीषु रक्ताः मूर्खाः जनाः धनार्थं जलयानेन जलधिं गाहन्ते-विलोडयन्ति । भोगविलासविषयान् अपि मार्गन्ते । तेऽस्मिन् विषयजाले संरक्ता विषयाणां वित्तानां असारतां न चिन्तयन्ति । अहं मन्ये यत् एतद् अर्हन्मूर्त्ति-पूजायाः अर्हतः पूजायाः विरक्तेः परिणाम एव ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**– हे देवेश ! इस संसार में कनक-कामिनी में मग्न-लीन मन्दमति,भ्रान्तमति लोग वैषयिक सुखों तथा धनादि के लिए सदैव जलपोत (पानी का जहाज) से समुद्रों का विलोड़न सा करते रहते हैं । उनका ध्यान कभी संसार की असारता तथा विषयभोगों की क्षणिकता विनश्वरता की तरफ नहीं जाता है । मैं इसे भी अरिहन्त भगवान की उपासना के प्रति स्वकृत विरक्ति का ही कारण मानता हूँ ।। १२७ ।।

[१२८]

□ **मूलश्लोकः**–

धरित्री सर्वेयं मणिगणधरित्री मुदकरी ,
धनं रूप्यं कूप्यं सुरक्षितिधरः काञ्चनमयः ।
प्रदीयन्ते यस्मै गज-रथ-हया-धूमगतयः ,
न वा तुष्यत् क्वाहो कथमपि महालोभजलधिः ।। १२८ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे जिनेश ! विषयभोगाभिलाषिभ्यः रत्नप्रत्ननिचयैः खचिता, मनोहारिणीयं वसुन्धरा, सर्वं सर्वप्रकारकं धनं, देवगिरिः कनकाचलः सुमेरुः, गज-रथादिकं धूमयानादिकं सर्वाण्यपि विज्ञातानि धनानि दीयन्ते चेत् तदापि तेषां महालोभसमुद्रः न तुष्यति ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे जिनेश्वर भगवन् ! लोभ की कोई सीमा नहीं है, क्योंकि–इस संसार के समस्त सुखों को बारम्बार भोगने की अभिलाषा रखने वालों को यदि समस्त गोधन, गजधन, वाजिधन और रत्न धन की खान वसुन्धरा सभी कुछ दे दिया जाये तो भी उनका महालोभ-समुद्र सन्तुष्ट नहीं होता है ।। १२८ ।।

[१२९]

☐ **मूलश्लोकः**–

इहास्ते यच्छ्रेय क्वचिदपि च प्रेयोऽतिगहनं ,
क्वचिद् गेयं ध्येयं पुनरपि च नेयं सुखकरम् ।
क्वचिद् देयं हेयं विषयविषवल्ली परिभृतं ,
न चेहन्ते चार्हन् ! तव पदसरोजैकमधुपाः ।। १२९ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे जिनेश्वरदेव ! इह विश्वस्मिन् विश्वे यत् किञ्चिदपि श्रेयः प्रेयो वा वर्त्तते तत् क्वचित् गेयं

ध्येयं पुनश्च सुखकरं नेयम् । क्वचिद् देयं हेयं (त्याज्यं) विषयभोगलतापरिलसितं वर्तते । हे अर्हन् परमात्मन् ! तव चरणकमलचञ्चरीकाः भक्ताः कदापि एवंविधं सांसारिकसुखं नाभिलषन्ति ।

❀ **हिन्दी अनुवादः**—हे अर्हन् परमात्मन् जिनेश्वर देव ! इस संसार में जो कुछ भी श्रेय एवं प्रेय या गेय, ध्येय है, वह विषयभोगलता से समाक्रान्त है । अतएव आपके चरणारविन्द के चञ्चरीक भक्तगण कदापि इन सांसारिक भोगविलास की अभिलाषा नहीं करते हैं ।। १२६ ।।

[१३०]

☐ **मूलश्लोकः**—

यथाणोर्नो सूक्ष्मो गगनपरिमाणाच्च न महान् ,
कुबेरान्नैवान्यो विपुलधनवानत्र भुवने ।
सुमेरोर्देवाद्रेः शिखरिषु न चान्यो गिरिवरः ,
तथा त्वत्तो नान्या जगति जिन ! पूजा शिवकरी ।। १३० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे सर्वज्ञजिनेश्वरभगवन् ! यथा अस्मिन् संसारे सूक्ष्मो न आकाशान्न महान् कश्चित् । धनपति कुबेरात् अन्यः संसारे धनवान् न वर्त्तते । देवगिरेः सुमेरोः अन्यः पर्वतः पर्वतेषु श्रेष्ठो न वर्त्तते । हे देवेश !

संसारे त्वत्तोऽन्या शिवकरी पूजा न वर्त्तते। अर्थात्-अर्हत्पूजा शिवङ्करी मङ्गलप्रदायिनी वर्त्तते। अतः सदैवाराधनीया जिनमूर्त्तिः-जिनप्रतिमा ज्ञेया।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवन्! जैसे इस संसार में अणु से सूक्ष्म, आकाश से विस्तीर्ण और धनपति कुबेर से धनवान कोई भी नहीं है; देवगिरि सुमेरुपर्वत से श्रेष्ठ कोई पर्वत नहीं है। देवेश! इस संसार में देवाधिदेव श्रीअरिहन्त-जिनेश्वर भगवान की पूजा से श्रेष्ठ-श्रेष्ठतर-श्रेष्ठतम शिवकरी कोई पूजा-आराधना एवं उपासना नहीं है। अतएव श्रीजिनप्रतिनिधि स्वरूपा यह मूर्त्ति-प्रतिमा सदैव अवश्य पूजनीया है॥ १३०॥

[१३१]

☐ **मूलश्लोकः—**

यथाग्नेर्नैवान्यो जगति दहनो विश्वदहनः,
रवेरन्या को वा तरुणतिमिराभोगभिदुरः।
समीरात् कश्चान्यः सततगतिमान् विश्वकुहरे,
तथा त्वत्तो नान्या जगति जिन! पूजा शिवकरी॥ १३१॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे जिनेश्वरभगवन्! यथा अस्मिन् संसारे पावकं परित्यज्य अन्यः कश्चित् विश्वदाहकः नास्ति।

सूर्यात् अन्यः कोप्यऽत्र गहनतिमिरविनाशको नास्ति। विश्वकुहरे समीरात् अन्यः कोऽपि सततगतिशीलो नास्ति। तथैव त्वत्तः अन्या कापि मङ्गलकारिणी पूजा न वर्त्तते।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे जिनेश्वर भगवान! इस संसार में अग्नि को छोड़कर के अन्य कोई भी विश्वदाहक नहीं है। सूर्य को छोड़कर के कोई गहनान्धकार को छिन्न-भिन्न करने वाला नहीं है। विश्वकुहर में पवन (हवा) के अतिरिक्त कोई भी सदा गतिमान नहीं है। ठीक इसी प्रकार आपकी पूजा के अतिरिक्त कोई मंगलकारिणी पूजा नहीं है॥ १३१॥

[१३२]

☐ **मूलश्लोकः—**

यतोऽयं संसारो जनन - मरणापायजनको,
बहिर्दृष्टो रम्यः प्रियजनसुखालापभरितः।
अजानन्नस्यान्तं कटुमयविकारं जडतया,
प्रविष्टोऽस्मिन् जीवो भ्रमति तव सेवाविरहितः॥ १३२॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे वीतरागविभो! स्फुटमेतद् यदयं संसारो जन्ममृत्युदुखप्रदः बाह्यदृष्टया प्रियजनमधुरा-लापविलसितो दृश्यते। अत्र प्रवेशे सम्प्राप्ते सति

मन्दबुद्धितया जीवः अस्य सांसारिकसुखस्य कटुतरं परिणामं अजानन् तव सेवा-पूजाविरहितः जन्म-मरणावर्ते सदैव भ्रमतितराम् ।। १३२ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे वीतराग विभो ! यह सम्यक् प्रकार से सुस्पष्ट है कि यह संसार आत्मीय प्रियजनों के मधुर आलाप-संवाद एवं व्यवहार से बाह्यदृष्टि से अतीव सुखद प्रतीत होता है । इस सांसारिक सुख के कटुमय परिणाम (फल) को विधिवत् न जानते हुए यह जीव आपकी सेवा-पूजा से विमुख होकर जन्म-मरण के आवर्त में सदैव घूमता रहता है ।। १३२ ।।

[१३३]

☐ **मूलश्लोकः**–

उदारोऽसौ विश्वे विगतपरितापो विजयते,
पिता माता भ्राता मुदितमृदुहासा च भगिनी ।
क्वचित् स्फारा दारा भवभ्रमणकारा युवतयः,
न वा त्रातुं शक्तास्तवचरणसेवाविरहितान् ।। १३३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–अस्मिन् संसारे दुःख-परिताप-रहितः पिता, माता, भ्राता, मृदुहासा भगिनी, स्फारा दारा, भवभ्रामका युवतयो वा क्वचित् अपि श्रीमच्चरणपूजा-

विरक्तान् असम्पृक्तान् मूढान् जनान् त्रातुं शक्ताः (समर्थाः) न भवन्ति ।। १३३ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–इस संसार में दुःख-परितापरहित पिता, माता, भ्राता, भगिनी (बहिन), ईषद्हाससमन्विता भार्या (पत्नी) या भवभ्रामक युवतियाँ आदि कोई भी कभी किसी प्रकार विषयासक्त मूढ़ (अज्ञानी) पुरुष का आपकी चरणसेवा से विरक्त होने पर त्राण करने में समर्थ नहीं होते हैं ।। १३३ ।।

[१३४]

☐ **मूलश्लोकः**–

यथारण्येऽगण्ये तृणतरुतमालेऽति - गहने,
विशाले वा शाले स्पृशति शशिभाले मृगगणः ।
प्रहृष्टो हा ! धृष्टः सुतरुतृणतुष्टो हतधिया,
शरैर्व्याधैर्व्याघ्रै र्ग्रसितपशुजालैः कवलितः ।। १३४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यथा अगणिततृणैः तमालातिशयेनातिक्रान्ते विशाले शालवृक्षे शशिभाले स्पृशति वनप्रदेशे मृगवृन्दः, सुष्ठुतृणसमूहतुष्टो हतभाग्येन व्याधबाणैः व्याघ्रैर्वा आस्वाद्यते कालकवलितो भवति तदा अन्येषां का कथेति विचार्यन्ताम् ।। १३४ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–जब अगणित तृणों, तमाल तथा विशाल शालवृक्षों द्वारा संस्पृष्ट शशिभालवाले वन में विचरण करने वाला मृगवृन्द जो तृण समूह से सन्तुष्ट है, वह भी नष्ट हुई है बुद्धि जिसकी ऐसे व्याध के बाणों द्वारा या व्याघ्रादि के द्वारा मारा जाता है, कालकवलित हो जाता है, तब अन्य की क्या बात करें, जरा विचार तो करो ॥ १३४ ॥

[१३५]

□ **मूलश्लोकः**–

तथा चास्मिन् लोके मृग इव जनौघः परिचरन् ,
क्वचिद्रोगैः शोकैः क्वचिदपि महाव्याधिकरिभिः ।
कुयोगैर्वा भोगैः कृतविधिवियोगैरतितरां ,
निपीडयन्ते जीवाः जिनशरणहीनाः कुमतयः ॥ १३५ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यथा मृगो व्याधैः व्याघ्रै राक्रान्तः तथैव जनसमूहोऽत्र परिचरन् कदाचिद् सामान्यरोगैः, कदाचिद् महाधिव्याधि-सन्तापैः, क्वचित् कुयोगैर्भोगैर्वा कृतविधिवियोगैः शोकैरहरहः जिनेश्वरशरणहीनाः जडधियः जीवाः निपीडयन्ते ॥ १३५ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**–जिस प्रकार मृगसमूह शिकारियों एवं हिंसक जन्तु व्याघ्र (बाघ) आदि के द्वारा आक्रान्त

होता है वैसे ही जनसमूह भी कभी सामान्य रोगों से, कभी महाधिव्याधि-सन्ताप आदि से, कभी कुयोग या विधि-विडम्बना से, शोकादिक से प्रतिदिन श्रीजिनेश्वरदेव की शरण के आश्रय के बिना जन्म-मृत्यु-रोग-शोक के चलते हुए चक्रयन्त्र में पिसता रहता है ।। १३५ ।।

[१३६]

☐ **मूलश्लोकः—**

अविद्यायाश्चेदं विधिविलसितं वा कलुषितं ,
मतिभ्रान्त्या गत्या जगति बहुख्या जिनवर !
भवत्पादारत्या कटुतरविपत्या कृतमिदम् ,
गतातङ्के स्वङ्के पुनरपि विधत्तां जनमिमम् ।। १३६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे जिनेश्वर भगवन् ! सांसारिक-सुखं प्रति रतिभावात् बुद्धि-विभ्रमात्, समुद्भूताज्ञानकलुषित-विधिविडम्बनया । भवदीयचरणारविन्दयोरश्रद्धाभावः, कटुतरविपत्तेः एतत् सर्वमवाञ्छितपरितापं प्राप्नोति । हे करुणार्द्रविमलक्रोडे पुनरपि जनमिमं स्थापयतु ।। १३६ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे जिनेश्वर भगवन् ! सांसारिक सुखों के प्रति अत्यधिक आसक्ति भाव से, बुद्धिविभ्रम से समुद्भूत अज्ञान कलुषित विधिविडम्बना से, आपके

चरणारविन्दों में अश्रद्धाभाव से तथा कटुतर विपत्ति से यह सभी अवाञ्छित परिताप प्राप्त होता है। आतंक-रहित अपनी विमल गोद में फिर से इस जन को स्थापित कीजिये ॥ १३६ ॥

[१३७]

□ **मूलश्लोक :-**

यथार्को ध्वान्तानां हरति सकलं गाढतमसां,
कृपीटश्शुष्काणां दहति लघुराशिं विटपिनाम्।
प्रचण्डो वै वातो विघटयति गावां घनघटां,
तथार्हन्ती मूर्त्तिर्हरति परितापं तनुभृताम् ॥ १३७ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**-येन प्रकारेण गहनान्धकारमर्कः (सूर्यः) विदारयति। शुष्कवृक्षसमूहं पावको दहति। प्रबलः प्रचण्डो वायुः गहनमपि मेघमालां विघटयति, छिन्न-भिन्नां करोति। तथैव श्रीअर्हन्मूर्त्तिः देहधारिणां सकलमपि परितापं झटिति दूरीकरोति ॥ १३७ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**-जिस प्रकार से सघन अन्धकार को सहस्र किरणधारी सूर्य दूर कर देता है, शुष्क वृक्ष-समूह को अग्नि सहसा ही जला देती है, प्रचण्ड वायु का वेग सघन घनघटा को छिन्न-भिन्न कर देता है; उसी

प्रकार श्रीअरिहन्त भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा देहधारियों के समस्त दुःख-सन्तापों को सहसा ही मिटा देती है ।। १३७ ।।

[१३८]

□ **मूलश्लोकः—**

सपर्या ते वर्य्या सकलभयभङ्गापि न कृता ,
न वा सेवा-पूजा भवमृडसुमन्त्रं न च कृतम् ।
न वा तन्त्रं स्तोत्रं शिवसुखकलत्रं परिचितं ,
तथाप्यर्हन्मूर्त्ते ! मम हृदयतापं शमयतु ।। १३८ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे सर्वज्ञ विभो ! जिनेश्वरदेव ! समस्तभयभङ्गकारिणी सर्वश्रेष्ठा भवतां सेवा-पूजापि मया कदापि न कृता । भवभ्रमणविनाशकं श्रीनमस्कार-महामन्त्र-स्तोत्रादिक-स्मरणं तथा श्रीशान्तिस्नात्रादिक-महोत्सवमपि श्रद्धया न कृतम् । श्रीसिद्धचक्रयन्त्र-तन्त्र-मन्त्राराधनापि मया सम्यग् न कृता । शिवसुखकलत्रं मोक्षसुखदायिनी मुक्तिदेवी अपि कदापि न सेविता तथापि मम विनम्रप्रार्थनया हे देवाधिदेव करुणासिन्धो ! श्रीअरिहन्त परमात्मन् ! मम हृदयतापं शमयतु एव ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे सर्वज्ञ विभो ! जिनेश्वरदेव !

समस्त सांसारिक भय को दूर करने वाली आपकी सर्वश्रेष्ठ सेवा-पूजा भी मैंने कभी नहीं की है। भवभ्रमणविनाशक श्रीनमस्कारमहामन्त्र-स्तोत्रादिक स्मरण तथा श्रीशान्ति-स्नात्रादिक महोत्सव भी श्रद्धापूर्वक किया नहीं है। श्रीसिद्धचक्रयन्त्र-तन्त्र-मन्त्र की भी सम्यग् आराधना की नहीं है, एवं शिवसुखकलत्र मोक्षसुखदायिनी मुक्तिदेवी की उपासना भी मैंने कभी नहीं की है। तथापि मेरी करुण पुकार सुनकर हे देवाधिदेव! करुणासिन्धो! श्रीअरिहन्त परमात्मन्! देर से भी आपकी अनुपम सेवा में समुपस्थित इस अधम-पातकी के समस्त हार्दिक-सन्तापों का शमन कीजिए ॥ १३८ ॥

[१३९]

☐ **मूलश्लोकः–**

न वा दत्तं दानं दुरितदवतोऽयं हृतधिया,
सुशीलं यच्छीलं नरकगतिकीलं न च भृतम्।
तपो वै नो तप्तं कुकृतपरितापं कथमहो!,
तथाऽर्हन्! कारुण्यात् तदपि मम तापं शमयतु ॥ १३९ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**–जडबुद्धया पापाग्निशमनाय दान-स्वरूपं जलमपि मया न वितरितम्। नरकगतिनाशकं सुशीलं सुचरितमपि मया नानुष्ठितम्। कुकर्मविनाशकं

तप अपि मया न तप्तम् । एवं सत्यपि जगति वत्सलत्वात् हे अरिहन्तदेव ! मम मनस्तापं पापं शमयतु ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—मन्दबुद्धि के कारण पाप रूपी अग्नि को शमन करने के लिए दान रूपी जल का भी मैंने वितरण नहीं किया है। नरकगति-विनाशक सुन्दर सुचरित का अनुष्ठान भी मैंने नहीं किया है। कुत्सित कर्मों का विनाश करने में सक्षम तप भी मैंने नहीं किया है। इस प्रकार का मेरा जीवन होने पर भी हे जगद्वल्लभ ! हे अरिहन्त परमात्मन् ! आप मेरे मनस्ताप को शान्त करें ।। १३९ ।।

[१४०]

☐ **मूलश्लोकः—**

क्रिया मे नो लीका भवदलनशीलापि च न मे,
न भावस्सद्भावो जनिमरणदावोऽपि न कृतः ।
कलाभ्यासाऽह्लादो नहि परिचितो दोषरहितः,
तथाप्येतत् सर्वं मम हृदि गतं पूरयतु वै ।। १४० ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—संसारदावानल - दलन - समर्था, पवित्रा सत्यसमन्विता क्रिया अपि मदीया नास्ति । न च मया जन्म-मृत्युविनाशकः सद्भावोऽपि समाश्रितः ।

दोषशून्यः कलाभ्यास-आह्लादेनापि अहं अपरिचितोऽस्मि तथापि हे प्रभो ! त्वं ममहृदयभावनां कारुण्यात् पूरयतु ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—संसार के दावानल को शान्त करने में समर्थ पवित्र सत्य क्रिया का अनुगमन भी मैंने नहीं किया है । जन्म-मृत्यु-विनाशक सद्भाव का आश्रय भी मैंने नहीं किया है । निर्दोष कलाभ्यास की प्रसन्नता से भी यह व्यक्ति परिचित नहीं है, तथापि हे अरिहन्त देव ! अपने कारुण्य भाव से आप मेरे हृदय की भावना (मनः कामना) को पूर्ण करें ।। १४० ।।

[१४१]

☐ **मूलश्लोकः**—

कियद् ब्रूमो मूर्त्या जिन ! सुमहिमानं हितवहं ,
नयैर्हीनो दीनस्तव रतिविहीनो विगतधीः ।
न सन्मार्गे चाहं न कविषु धुरीणो बुधवरः ,
कृपासिन्धो ! नित्यं तदपि परितापं शमयतु ।। १४१ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे देवाधिदेव ! जिनेश्वरभगवन् ! अहं तव सुमूर्त्याः कियद् महिमानं कथयामि । नीति-ज्ञानहीनः श्रीमच्चरणारविन्दश्रद्धाविहीनो बुद्धिविलासशून्यः अस्मि । अहं सन्मार्गारूढः, कविकर्ममर्मज्ञो विद्वान् अपि

नास्ति तथापि कृपासागर ! मम परितापं भवान् नित्यं शमयतु ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–हे देवाधिदेव ! जिनेश्वर भगवन् ! मैं नीतिशास्त्रीय ज्ञानशून्य आपके चरणारविन्द के प्रति सम्यक् श्रद्धाविहीन, बुद्धिविलासरहित आपकी मूर्त्ति-प्रतिमा की विस्तृत महिमा का वर्णन कितना कर सकता हूँ ? मैं सन्मार्ग का राही तथा कविकर्मदक्ष विद्वान् भी नहीं हूँ । तथापि हे करुणामय ! आप मेरे हार्दिक परिताप को सदा दूर करें ।। १४१ ।।

[१४२]

□ **मूलश्लोकः–**

कियद् ब्रूमश्चार्हन् गगनपरिमाणं तव यशः,
सहस्रं लक्षं वा भवतु रसना मे सुवदने ।
ममायुष्यं क्वाहो सुरपतिसमायुर्यदि भवेत्,
भवत् कीर्त्तेरन्तः कथमपि कदाचिन्न भविता ।। १४२ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–हे अरिहन्तदेव ! भवतां महिमा भवन्मूर्त्तिमहिमा वा आकाशमिव अन्तहीनाऽस्ति । अहं मन्दमतिः किं वक्तुं लिखितुं वा समर्थः ! अहं चिन्तयामि यदि मम मुखे सहस्रं लक्षं वा जिह्वाः सन्तु ममायुष्यमपि

देवेन्द्रायुरिव सुदोर्घा भवतु तदापि तव कीर्त्तिकौमुद्याः अन्तं कदापि न भविष्यति ।

❋ **हिन्दी अनुवाद**–हे अरिहन्तदेव ! आपकी महिमा आकाश की तरह अनन्त है । उसके विषय में भला मेरे जैसा अविकसित बुद्धि वाला क्या कह या लिख सकता है ? मैं कल्पना करता हूँ कि यदि मेरे मुख में हजार या लाख भी जिह्वायें हों तथा मेरी आयु भी देवराज इन्द्र के समान हो तो भी मैं आपकी कीर्त्तिरूपी चन्द्रिका के छोर का वर्णन भी प्रस्तुत नहीं कर सकता हूँ ।। १४२ ।।

[१४३]

☐ **मूलश्लोकः**–

मनसि वचसि काये त्वां सदैवोद्वहन्तः,
तव विशद गुणौघं विश्वतः ख्यापयन्तः ।
सुरमनुजरसायां त्वां सदा पूजयन्तः,
प्रमुदितमुखपद्माः सन्ति सन्तः कियन्तः ? ।। १४३ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–मानसे वचने शरीरे सदा त्वामुद्-वहन्तः, तव विशदां कीर्त्ति विश्वस्मिन् विस्तारयन्तः, स्वर्गभूलोके सदैव त्वां पूजयन्तः प्रसन्नमुखकमलाः सन्तपुरुषाः कियन्तः (परिगणिताः) एव सन्ति ।। १४३ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—मन, वचन, काया से सदा आपको धारण करने वाले, आपकी विमल विशद कीर्त्ति को संसार में विस्तृत करने वाले भूलोक तथा स्वर्गलोक में आपको सादर पूजकर प्रसन्न मुखमुद्रावाले सच्चे धार्मिक लोग भी गिनती के ही हैं ।। १४३ ।।

[१४४]

□ **मूलश्लोकः**—

परकृतमुपकारं चेतसा धारयन्तः,
अभिमतफललाभे त्वां सदा चिन्तयन्तः ।
तव पदजलजातं कामदं कल्पयन्तः,
विकसितवदनाब्जाः सन्ति सन्तो महान्तः ।। १४४ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—अन्येषामुपकारं विधाय चेतसा धारयन्तः अभीष्टफललाभे सति त्वां सदैव चिन्तयन्तः । भवदीयचरणकमलं मनोवाञ्छितप्रदं कल्पयन्तः, विकसितवदनाः सन्तो महान्तः सन्ति ।। १४४ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—दूसरों की भलाई की भावना सदैव अपने चित्त में धारण करने वाले, अभिलषित फल-प्राप्ति के समय भी आपका चिन्तन-मनन करने वाले, आपके चरणकमलों को मनोवांछित फलदाता मानकर, महान् सन्त बहुत से हैं ।। १४४ ।।

[१४५]

□ **मूलश्लोकः—**

जनिमरणजराभिस्सर्वतः पीडयन्तः ,
ननु कथमपि स्वास्थ्यं कुत्रचिन्नाप्नुवन्तः ।
विधिकृतपरितापैस्त्याजिता जीविताशाः ,
तदपि च तव नाम्ना जीवनं धारयन्तः ।। १४५ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—जन्म-मरण-वार्धक्यैः सर्वतः पीडिताः, कस्मिँश्चित् स्थानेऽपि स्वास्थ्यलाभं नाप्नुवन्तः । विधिविडम्बनाभिः जीवनाभिलाषां त्यज्यन्तः सन्ति, तथापि भवदीयनाम्ना तेऽपि जीवनं धारयन्ति ।। १४५ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—जन्म-मरण-बुढ़ापे से पीड़ित होकर किसी प्रकार भी किसी स्थान पर स्वास्थ्य लाभ न प्राप्त करके जो लोग अपने जीवन के प्रति निराश हो गये हैं, वे भी आपके नाम से जीवन धारण कर रहे हैं ।। १४५ ।।

[१४६]

□ **मूलश्लोकः—**

अगणितपुरुषार्थैर्लभ्यते यो न लाभः ,
हृदि विनिहितपापैर्मन्यते तुच्छभालः ।
कलुषितपरिणामैर्निन्द्यते दीर्घकालः ,
तदपि तव कृपातः तीर्यते दुःखजालम् ।। १४६ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यो लाभोऽसंख्यैः प्रयासैर्न लभ्यते । संचितपापैर्यः स्वकीयं भाग्यं तुच्छं मनुते । विधिविडम्बनाभिर्दीर्घकालं यावत् निन्दां करोति, किन्तु भवदीय-कृपाभिः दुःखजालं तरति ।। १४६ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**–जो लाभ असंख्य प्रयासों से प्राप्त नहीं होता, वह आपकी कृपा से सहज प्राप्त हो जाता है । अपने द्वारा संचित पापों से जो व्यक्ति अपने आपको हतभाग्य मानता है, विधिविडम्बना से दीर्घकाल तक अपने भाग्य को कोसता रहता है, किन्तु आपकी कृपा से वह भी शीघ्र ही दुःखश्रेणियों को पार कर जाता है ।। १४६ ।।

[१४७]

☐ **मूलश्लोकः**–

दिवि भुवि फणिलोके दुर्लभो यः पदार्थः,
अतिवर्धितलाभै - र्भ्रम्यते यत्र सार्थः ।
विधिगतिविपरीतात् प्राप्यते वाऽप्यनर्थः,
अर्हन् तव दृष्टया स्याद्यतेऽसौ पदार्थः ।। १४७ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**–यः पदार्थः स्वर्गलोके, भूलोके, नागलोके च दुर्लभो भवति । अत्यधिकलाभैः यत्र सार्थः भ्रम्यते । विधिविडम्बनातः असौ पदार्थः प्राप्यते न वेति

सन्देहास्पदमेव । तथापि हे अर्हन् ! भवदीय कृपादृष्टिभिरसौ पदार्थो निश्चप्रचत्वेन अभिलाषिभिः प्राप्यत एव ॥ १४७ ॥

❀ **हिन्दी अनुवाद**—स्वर्गलोक, भूलोक तथा पाताललोक में जो पदार्थ दुर्लभ होता है। अत्यधिक लाभ की अभिलाषा से जहाँ व्यापारीगण भ्रान्त होते रहते हैं। विधिविडम्बनावश वह पदार्थ वे प्राप्त करते हैं या नहीं, इसमें सन्देह रहता है। किन्तु आपकी कृपादृष्टि से वह पदार्थ निश्चित रूप से अभिलाषी गण प्राप्त कर लेते हैं ॥ १४७ ॥

[१४८]

☐ **मूलश्लोकः**—

श्रीमज्जिनेश ! तव कीर्तिकला विशाला,
छद्मस्थजीव इतिवन्नहि वक्तुशक्तः ।
मन्ये तवैव कृपया परया मयैतत्-
शास्त्रानुसारि लिखितं श्रुतिसारगर्भम् ॥ १४८ ॥

卐 **संस्कृतभावार्थः**—हे अकारणकरुणावरुणालय ! जिनेश्वर ! भवदीया कीर्तिकला-कौमुदी अतीवशुभ्रा विशाला अगम्या च वर्तते । तस्या वर्णनमिदमित्थमेवेति कोऽपि छद्मस्थो जीवो कथमपि वक्तुं समर्थो नास्ति ।

मया सुशीलसूरिणा यत्किमपि शास्त्रानुकूलमागमानुसारि च मूर्तिपूजायाविषये तथ्यात्मकं सत्यात्मकञ्च लिखितं तन्मन्ये भवतां परमकृपाया एव प्रतापः ।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—हे करुणामूर्ति ! जिनेश्वर !! आपकी कीर्तिकला अत्यधिक विशाल है । उसका सम्यक्-तया वर्णन "यह इतना ही है, ऐसा ही है ।" कोई भी छद्मस्थ जीव नहीं कर सकता तथापि मैंने [विजयसुशील-सूरि ने] यह जो मूर्तिपूजा के विषय में आगमशास्त्रवचना-नुसार सारगर्भित पूर्ण प्रामाणिक लिखा है—वह भी मानों आपकी परमकृपा का ही प्रतिफल है । अन्यथा मेरी इतनी सामर्थ्य कहाँ ? ।। १४८ ।।

[१४९]

□ **मूलश्लोकः**—

जैनागमेषु निगमेषु च मूर्तिपूजा ,
सर्वत्र सुष्ठुवचनैः परमैरुदारैः ।
एषास्ति वर्णितपदा परमाभिवन्द्या ,
तस्मादलं मम मनोमलनाशनार्थम् ।। १४९ ।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—विश्वविश्रुतेषु जैनागमेषु विविधेषु निगमेषु च मूर्तिपूजायाः प्रामाणिकता सर्वत्र समुल्लसिता ।

शोभनैः उदारैः सारवद्भिर्वचनैः एषा मूर्तिपूजा आदृता, अभिवन्द्या च वर्णिता। अतएव श्रीजिनेश्वरमूर्तिपूजा-सार्द्धशतकं मे मनोमलविनाशाय समर्थम्—इति ।। १४९ ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—विश्वविदित जैनागमों, विविध निगमों तथा शास्त्रों में प्रामाणिक सद्वचनों, सुतर्कों के माध्यम से जिनमूर्तिपूजा का समुल्लेख है तथा यह जिन-मूर्ति सदैव त्रिलोक में अभिनन्दनीय एवं वन्दनीय है। अतएव मेरी आस्था है कि यह '**श्रीजिनमूर्तिपूजासार्द्धशतकम्**' मेरे अन्तर्मन के समस्त पापरूपी कालुष्य को विनष्ट करने में समर्थ है ।। १४९ ।।

[१५०]

□ **मूलश्लोकः—**

इत्थं श्रीजिनराजमूर्त्ति-महिमा शास्त्रैः प्रमाणीकृता ,
सन्नामाकृति-द्रव्य-भाव-भरितैः सम्पूजिता सज्जनैः ।
देवैर्या महिता नतेन शिरसा विघ्नौघविध्वंसिका ,
तस्मात् सर्वफलप्रदा जिनपतेर्मूर्त्तिः सदा पूज्यताम् ।।१५०।।

卐 **संस्कृतभावार्थः**—युक्तियुक्तागमादिप्रमाणैः प्रमाणिता '**श्रीजिनमूर्त्तिपूजा**' पूर्णरूपेण सत्यानुप्राणिता अस्ति। सर्वज्ञसत्पुरुषैः श्रीतीर्थङ्करैः श्रुतकेवलिश्रीगणधरैश्च सततं

नामाकृतिद्रव्यभावरूपैश्चतुष्निक्षेपैः नित्यं पूजितेयमिति। देवलोकवासिदेवेन्द्रैरपि देवाधिदेवश्रीजिनेश्वराणां मूर्त्तिपूजा-प्रतिमापूजा भावभक्तिपूर्वकं कृता। अतः कल्पवृक्षादपि अधिकेयं मनोरथप्रदा संसारावागमनविध्वंसिनी श्रीजिन-मूर्त्ति-जिनप्रतिमा सर्वदा सर्वथा श्रद्धया भक्त्या च पूजनीया वन्दनीयेति संसिद्धम् ।। १५० ।।

❀ **हिन्दी अनुवाद**—आगमादिक अनेक प्रकार के प्रमाणों से प्रमाणित यह **'श्रीजिनमूर्त्तिपूजा'** पूर्णतः सत्यानुप्राणित है। श्री तीर्थंकर भगवन्तों, गणधरों, महापुरुषों एवं इन्द्रों इत्यादि द्वारा भी यह नाम, आकृति, द्रव्य और भाव से सदा पूजित रही है। अतः कल्पवृक्ष से भी अधिक मनोरथदायिनी, भवबन्धनिवारिणी **'श्रीजिन-मूर्त्ति'** सर्वदा श्रद्धा और भक्तिभाव से पूजनीय एवं वन्दनीय है। यह सर्वदा सिद्ध है ।। १५० ।।

卐

卐 ॥ प्र श...स्तिः ॥ 卐

श्रीविक्रमे वरे वर्षे, निधिवेदनभाक्षिके ।
वैशाखे हि शुभे मासे, शुक्लषष्ठ्यां तिथौ दिने ॥ १ ।

प्रख्याते **भारते** देशे, **राजस्थाने** हि प्रान्तके ।
मरुधरे प्रदेशे वै, **मेडतानगरे** वरे ॥ २ ॥

जीर्णोद्धारकृते प्राच्य - **शान्तिनाथ जिनालये** ।
श्रीअञ्जनशलाकायाः, पञ्चकल्याणकोत्सवे ॥ ३ ॥

पार्श्वनाथजिनेन्द्राणां, प्राच्य-नव्य सुबिम्बयोः ।
श्रीगौतमादि मूर्त्तीणां, प्रतिष्ठायाः शुभोत्सवे ॥ ४ ॥

आदिनाथस्य चैत्येऽपि, प्राच्यपरिकरस्य वै ।
श्रीआदि-पार्श्वबिम्बानां, प्रतिष्ठायाः महोत्सवे ॥ ५ ॥

श्रीआनन्दघनस्याऽपि, पुण्यस्मृतिसुमन्दिरे ।
आनन्दघनमूर्त्तेश्च, प्रतिष्ठायाः वरोत्सवे ॥ ६ ॥

पूज्यानां गुरुदेवानां, सूरीशानां महीतले ।
नेमि-लावण्य-दक्षाणां, **सुशीलसूरिणा** मया ॥ ७ ॥

श्रीजिनमूर्त्तिपूजायाः, **सार्द्धशतकनामकम्** ।
भक्तिरूपमिदं स्तोत्रं, पूर्णकृतं सुभावतः ॥ ८ ॥

एतच्च शतकं सार्द्धं, प्रमाणशतशोधितम् ।
निजबुद्धया मयाऽकारि, पठ्यताञ्च सुधीश्वरैः ॥ ९ ॥

समस्तसिद्धिं सुवृद्धिञ्च, सर्वदुःखविनाशनम् ।
प्राप्नोति पुरुषो भक्त्या, जिनपादाब्ज सेवया ॥ १० ॥

अस्य स्तोत्रस्य नित्यं वै, स्मरणान्मननात् तथा ।
प्राप्नोति पुरुषः सद्यः, सुशीलपदमव्ययम् ॥ ११ ॥

॥ श्रीरस्तु ॥ शुभं भवतु श्रीसङ्घस्य ॥

।। 卐 ।। श्रीजिनशासनदेवाय नमः ।। 卐 ।।

जैनधर्मदिवाकर, मरुधरदेशोद्धारक, तीर्थप्रभावक, राजस्थानदीपक, शासनरत्न **आचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. साहब** के कर-कमलों में **सादर समर्पित....**

❁ अभिनन्दन-पत्रम् ❁

आचार्यप्रवर !

लघुदेह में विपुल ज्ञान का सागर लिये हुए आपकी संयम-यात्रा स्वोपकार व परोपकार रूपी "**तिन्नाणं तारयाणं**" भाव की अभिव्यक्ति करती हुई **जीवन** सरिता के तटों को झकझोर कर कल्याण-पथ पर आगे बढ़ रही है।

मुनिपुंगव !

आपका जीवन श्वेत परिधान की तरह है। आपकी संयमरूपी चादर सर्वत्र सफेद ही सफेद दिखाई दे रही है।

सन्तशिरोमणि !

आपके वात्सल्यभाव से मैत्री और करुणा की ऐसी अजस्रधारा बह रही है, जो राष्ट्र और समाज का कल्याण करती हुई निरन्तर प्रवहमान है।

अद्‌भुत व्यक्तित्व !

सयम की शुद्ध साधना में विपुल ज्ञान का अपूर्व संगम आपश्री के जीवन में मिलता है। आपका जीवन सद्ज्ञान (विहगज्ञान) और क्रिया के पंखों पर उड़कर मोक्षमार्ग की उड़ान भर रहा है।

आज हम माँ मीराँ, योगिराज आनन्दघनजी एवं कविवर वृन्द की पुनीत पावन स्थलो मेड़ता शहर की इस धरती पर सकल सघ की उपस्थिति में पूज्य आचार्य भगवन्त को **'श्रीजिनशासनशणगार'** के अलंकरण से विभूषित करते हुए अपार गौरव की अनुभूति करते हैं।

आपके श्रीचरणों में शत-शत वन्दन।

शुभ मिति वैशाख शुक्ला ६, बुधवार
संवत् २०५० दिनांक २८-४-१९९३

विनीत :
जैन सकल संघ, मेड़ता शहर

❀ प्राप्ति स्थान ❀

☐ **आचार्यश्री सुशील सूरि जैन ज्ञान-मन्दिर**
शान्तिनगर, मु. सिरोही–307 001 (राज.)

☐ **श्री अरिहन्त-जिनोत्तम जैन ज्ञान-मन्दिर**
मु. जावाल, जि. सिरोही (राज.)

☐ **सुशील-सन्देश प्रकाशन मन्दिर**
सुराणा कुटीर, रूपाखान मार्ग,
पुराने बस स्टेण्ड के पास,
मु. सिरोही–307 001 (राज.)

मुद्रक—ताज प्रिण्टर्स, जोधपुर दूरभाष : 21435, 21853